राजहंस

"सन्त हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि विकार"

—तुलसीदास

मंत्री- विजय कुमार २ य वर्ष
विद्यालंकार

सम्पादक—

महावीर 'नीर' विद्यालंकार
एम.ए. प्रथम वर्ष

राजहंस

१ अगहन २०२२ सं०
१५ नवम्बर १९६५ ई०

विषय-सूची

राजहंस

राजहंस

दो शब्द

- विजयकुमार विद्यालंकार
(अन्तिम वर्ष)

सभ्यता का विकास मानवता के विकास की कहानी से कम पुराना नहीं। प्राचीन आर्यों का दृढ़ विश्वास था कि सृष्टि के आदि में परमात्मा ने मनुष्य को ज्ञान देने के लिए चारों वेदों की रचना की। दृश्यमान व्यावहारिक जगत का स्थूल और सूक्ष्म अनुभव नित्य इस बात की दुहाई दे रहा है कि कोई भी व्यक्ति बिना किसी के सिखाये स्वयं न तो भाषा सीख सकता है और नहीं अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का कोई अन्य तरीका। अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का भाषा एक सहज माध्यम है। संसार का प्रत्येक प्राणी अपने अन्तस् में भावों और विचारों की अनुभूति करता है। उन अनुभूतियों को प्रगट करने का स्वाभाविक प्रयत्न सभी प्राणियों में देखा गया है। ज्ञानपूर्वक विचार का कार्य करने की आवश्यकता को दृष्टिगत कर परमात्मा ने मानव को भाषा सिखाई। भाव, विचार और भाषा की त्रिवेणी सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिए साहित्य में इठलाती प्रवाहित होने लगी।

भाषा और भावों के सुनहले मोतियों को चुनकर 'राजहंस' अपने प्रिय पाठकों के मनोरंजन और ज्ञान की अभिवृद्धि में प्रस्तुत है॥ • • •

राजहंस

किसकी महिमा गा रहे मौन ?

इन हरित तृणों की काया पर, किसने बिखराये स्वर्ण जाल।
वह कौन शक्ति है भुवन बीच, प्रकाशित जिससे अन्तराल॥

उठ चला व्योम में प्रचण्ड ताप, आया पावस का दिव्य गान।
फिर शिशिर व्योम से झांक रहा, लो आये करते भृङ्ग गान॥

किससे ऋतुवें चलती सारी, है कौन चमकता बन सूरज।
यह दिव्य प्रभा फैली किसकी, मेघों में किसने भरी गरज॥

किस हेतु रची सृष्टि सारी? यह एक प्रश्न उठता है मौन।
ये दिव्य-खण्ड धरती तल के, किसकी महिमा गा रहे मौन॥

— 'वीर' विद्यालंकार

राजहंस

यथा सौम्यं वयांसि वासो वृक्षं सम्प्रतिष्ठते ।
एवं ह वै तत् सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥

हे सौम्य, पक्षीगण जैसे वास-वृक्ष में आकर स्थिर होते हैं, वैसे ही यह जो कुछ है, समस्त ही परमात्मा में प्रतिष्ठित हुआ करता है।

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्ते-
नेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥

वृक्ष की भांति आकाश में स्तब्ध हुए विराज रहे हैं वही 'एक'। उस पूर्ण में यह सभी कुछ पूर्ण है।

मीठी मुस्कराहट, आँखों में प्यार, दिल में दोस्ती
जिन्दगी यह फूल बन जाय तो जिन्दगी है।

— पी॰ अेम॰ बाबू 'प्रकाश'
आयुर्वेद महाविद्यालय

हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी

– धर्मदीप विद्यालंकार
M.A. (फाइनल)

लगभग २०० वर्ष की पराधीनता की जन्जीरें को तोड़कर हम भारतवासियों ने १५ अगस्त १९४७ के पावन-पुण्य-प्रहर में स्वतन्त्रता देवी के दर्शन किए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए हमारे देशभक्तों ने अपने प्राणों की आहुतियां दी। आज हमें स्वतन्त्र हुए १८ वर्ष हो गए हैं किन्तु हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रश्न ज्यों का त्यों है।

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक उन्नति उसके समस्त निवासियों में सच्चा प्रेम, संगठन और एकता की भावना के द्वारा उत्पन्न होती है और यह सब कुछ बिना एक सम्पर्क भाषा के नहीं हो सकता। इसलिए आवश्यक है कि राष्ट्र की कोई राष्ट्रभाषा हो, जिसको अधिकांश व्यक्ति समझ सकें या बोल सकें।

आर्यावर्त के प्राचीन इतिहास के अध्ययन से पता

स्पष्ट हो जाता है कि उस समय संस्कृत भाषा ऐसी थी, जिसको सब लोग समझते थे और जिसमें वे सब व्यवहार करते थे। समस्त भारतवासियों की भाषा होने के कारण ही संस्कृत भाषा को भारती के नाम से पुकारा जाता था।

भारत की वर्तमान अवस्था को ध्यान में रखते हुए हमारी राष्ट्रभाषा कौनसी हो, जिसको हमें पूर्णतया अपनाना चाहिए? जिसका प्रसार समस्त राष्ट्रवासियों को एक सूत्र में पिरोने के लिए करना चाहिए।

१९५० में भारतीय संविधान में यह घोषित किया गया कि १९६५ के बाद भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी होगी - तात्पर्य यह है कि अब-तक जो राजकीय-काम-काज और पत्रव्यवहार अंग्रेजी में होता था। वह १९६५ के पश्चात हिन्दी में होगा किन्तु आज की स्थिति को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि हम अपने ध्येय की पूर्ति में शिथिल हो गए। नीतियों को बनाना तो सरल है किन्तु उस पर सारे के सारे सरकारी और गैर सरकारी ढांचे को बदलना बड़ा कठिन है किन्तु हमारी इस निर्बल और पंगु सरकार ने बदलने तक की भी तो चेष्टा नहीं की। केवल हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए बजट पास करके रख देना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उससे राष्ट्र की

राजहंस

भाषाओं के विकास में योग देना भी तो अनिवार्य है।

दुनिया के प्रायः सभी नवोदित राष्ट्र अपने ही देश की भाषा को महत्व देते हैं और प्राण-प्रण से उसको बढ़ाने का प्रयास करते हैं किन्तु एक हम हैं जो अपनी ही माता को दासी की दशा तक पहुँचा कर भी चुप नहीं हुए अपितु उसे घर से बाहर निकालने की कोशिश करते हैं। क्या हैं हम! कहाँ है हमारा राष्ट्राभिमान। शिक्षा लो उस कमाल पाशा से जिसने एक ही रात में कहा था- "आज से राष्ट्र का सारा कार्य तुर्की में होगा। क्या हमारे शासक ऐसी दृढ़ता नहीं दिखा सकते?

एक दिन वह भी था जब जर्मनी ने फ्रांस को पराधीन कर उसकी भाषा का समूल नाश करने की सोची। जर्मनी की रानी कैसराइन एक स्कूल में निरीक्षण करने गई। वहाँ एक दस वर्षीय बालिका से प्रसन्न होकर रानी ने बालिका से कहा "मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम जो चाहो माँगो।" बालिका ने जानते हो क्या कहा- 'रानी! यदि तुम मुझसे सचमुच प्रसन्न हुई हो तो मेरी भाषा मुझे लौटा दो।' यह है उन लोगों का भाषा-प्रेम जिनकी हर बात में हम नकल करना चाहते हैं। आज राष्ट्र को ऐसे ही बालक और बालिकाओं की आवश्यकता है।

हमारे महान नेता श्री नेहरू के निधन के पश्चात शास्त्री

राजहंस

सरकार के हाथों में देश का शासन सूत्र आया। दुर्भाग्य है कि नई सरकार इस समय देश में विघटनकारी तत्व भाषाई मामले को सुलझाने में सर्वथा असफल रही है यदि हमें लोकतन्त्र को स्थाई बनाना है तो सरकार को दृढ़ रुख अपनाना चाहिए। मार्च १९६५ को भाषाई मामले को लेकर मद्रास में अबोध बालकों को उकसाने वाले द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम के नेता हैं जिनके हाथ में देश की सत्ता है।

अभी हाल ही में कृषि एवं खाद्यमन्त्री श्री सी. सुब्रह्मण्यम ने कहा था कि "सरकारी कागजों पर अंग्रेजी में लिखी टिप्पणियों का हिन्दी अनुवाद न मांगा जाए जबकि हिन्दी में लिखी टिप्पणियों का अंग्रेजी अनुवाद साथ में अवश्य दिया जाए।"

निर्दलीय संसद सदस्य प्रकाशवीर शास्त्री ने उचित ही कहा था कि भाषाई मामले को लेकर कामराज जैसे चोटी के नेता दिल्ली में बैठे-बैठे फूंक मारकर लोगों को भड़काने का प्रयत्न करते हैं ऐसी स्थिति में भगवान ही हमारे देश का मालिक है। हमारे देश के नेता महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस, टैगोर, महर्षि दयानन्द जैसे तपस्वी नेताओं ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए जोरदार आवाज उठाई। अतः यह उचित ही है कि —

१. देश की राष्ट्र-भाषा वही हो सकती है जिसका उद्गम भी देश का हो

राजहंस

2. राष्ट्रभाषा के रूप में उसी भाषा को स्वीकार किया जा सकता है जिसको बोलने या समझने वालों की संख्या उस देश में अन्य-भाषा-भाषियों की अपेक्षा अधिक हो।

3. राष्ट्रभाषा उसी को माना जा सकता है जिसका उस राष्ट्र की संस्कृति और प्राचीन साहित्य के साथ विशेष सम्बन्ध हो।

4. राष्ट्रभाषा की लिपी, सरल, वैज्ञानिक तथा एक होनी चाहिए।

इन सब दृष्टियों से हम हिन्दी भाषा को परिपूर्ण मानते हैं और यही एक राष्ट्रभाषा के उपयुक्त है किन्तु आंग्लभाषा सहभाषा के रूप में लाकर सरकार हिन्दी भाषा का महत्व कम कर रही है।

अंग्रेजी के समर्थक या अन्य किसी अंग्रेजी समर्थक लोगों की बात पर सरकार किसी प्रकार ध्यान न दे क्योंकि उसके सामने सम्पूर्ण देश के भाग्य का सवाल है। जिन लोगों की धड़ पर सिर, सिर में दिमाग, और दिमाग में कुछ भी बुद्धि है उन्हें न भूलना चाहिए कि हमारी परतन्त्रता का कारण आपसी मतभेद एवं सत्ता की दुर्बल नीति ही थी। आज भी जो लोग जरा जरा सी बात को लेकर राज्यों को केन्द्र से अलग होने की बात करते हैं उन्हें प्रान्त-प्रेमी भले ही कहें राष्ट्र-प्रेमी तो किसी हालत में नहीं कहा जा सकता। सरकार को ऐसे अंग्रेजों को ध्यान दिया नहीं बदलने चाहिए।

राजहंस

राष्ट्र का शासन दण्ड से ही सम्भव है क्योंकि मनु ने कहा है — 'दण्डः शास्ति प्रजा सर्वा,
दण्ड सुप्ते एवाभि (रक्षति)
दण्ड सुप्तेषु जागर्ति,
दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥'

अतः देश के कर्णधारों को दण्डनीति से काम लेकर साहस पूर्वक कार्य करना चाहिए और राज्यों को भी कोई भी ऐसी बात कदापि स्वीकार नहीं करनी चाहिए जिससे किसी विदेशी भाषा को प्रोत्साहन मिले। क्योंकि भारतेन्दु जी ने कहा था —

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल ॥"

• • •

हिन्दी हमारी माँ है और अपनी ही माँ को जो अपने घर में लाने के लिए सालों-वर्षों की सीमा बांधते हैं, वे या तो पागल हो गए हैं या किसी स्वार्थ ने उन्हें अंधा कर डाला है। — राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

(एकांकी)

नाटक — राजहंस

दोस्ती

- हरिहर घोष

M.Sc. (अन्तिम वर्ष)

पात्र परिचय —

सोहन — गरीब लड़का } दोनों दोस्त
मोहन — धनी लड़का }
संगीता — सोहन की माँ
रेनु — मोहन की माँ
अशोक — सोहन का शिष्य
रामू — नौकर (मोहन का)

(प्रथम दृश्य)

(समय - सायंकाल, टहलते हुए)

सोहन — दोस्त, मेरे यार एक बात बताऊँ।

मोहन — एक क्या लाख बताओ।

सोहन — देखो, तुम दोनों मेरे ने प्रथम श्रेणी में पास किया है। अब तुम आगे पढ़ो, डाक्टर बनो और अपने यार [illegible] से

राजहंस

हम सब भाईओं को बिमारी से बचाओ। तुम बड़े बनकर इस गरीब बचपन के साथी को न भूलना, मेरे यार।

मोहन – तुम नहीं पढ़ोगे। तुम्हें छोड़कर मैं अकेला कैसे रहूँगा। मुझे याद है, जब ६वीं श्रेणी में पढ़ रहा था तब मुझे चेचक हो गया था, तुमने मेरी कितने प्यार से सेवा की थी। अब बाद अगर बिमारी से मर जाऊँ तो तुम नहीं देखोगे। मेरी दर्द भरी पुकार को नहीं सुनोगे? क्या बचपन का दोस्त आंधी की तरह होता है। तुमको पढ़ना होगा, मेरे यार। तुम पढ़कर प्रोफेसर बनो। तब दोनों की दोस्ती जरूर मरते दम तक रहेगी और तुम यदि नहीं पढ़ोगे, मैं भी नहीं पढ़ूँगा।

सोहन - मैं गरीब से गरीब खानदान का हूँ, भला कैसे पढ़ सकता हूँ। यदि किसी तरह शहर में एक आध ट्यूशन मिल जाता तो पढ़ सकता था। तुम्हारा साथ जीवी ड्रेस से कैसे मिलूँगा। मेरे दोस्त बचपन के प्यार को नष्ट नहीं होने दूँगा और तुम रांची में पढ़ोगे वहाँ तो मेरे जैसे गरीब की जगह नहीं है।

मोहन - ऐसा मत सोचो सोहन। तुम यदि दोस्ती के नाते मुझसे दूर रहना चाहते हो तो तुम हायर कॉलेज में पढ़ो यहाँ ३०) में काम चल जाता है। और दोनों चिट्ठी-पत्री

हरेक सप्ताह देते रहना। मैं कल रांची जाऊँगा, तुम मुझे विदा देने के लिए तैयार रहना — याद रखना कल प्रातः ६½ बजे की गाड़ी में — —

सोहन — हाँ मिलूँगा मोहन। तुम्हें तो मालूम है कि मेरी माँ बीमार है, चल आज उनसे मिल लो — तुम्हें आज सुबह से बहुत चाह रही थी।

मोहन — चलो (प्रस्थान)।

[दृश्य 2]

(मोहन और सोहन और संगीता)

मोहन और सोहन का युगल गान —

माँ तेरे चरणों में जुटा दें अपनी जान।
दूर देश में कैसे सुनेंगे माँ तेरा आह्वान।
तेरे प्यार की सुरभी रही मेरे दिल का अभिमान।
याद रखेंगे तुमको माता — जाते अपनी जान।
पुत्र-प्यारी माता मेरी रोना नहीं तुम।
आऊँगा मैं बड़ा बनकर योगी मुझे तुम।
प्यार भरा छोटा भाई रहेगा तेरे पास।
उसको देखकर तुम्हें हलका दिल को देता आश्वास।

सोहन — माँ! देखो तुम्हें देखने के लिए कौन आया है।

संगीता — अरे, मोहन बेटा! तू मुझसे एक रोज भी काहे [illegible]

राजहंस

नहीं दिया। क्या बोला माँ - माँ नहीं होती।

मोहन — ऐसा न कहो मां। मैं कल रांची पढ़ने के लिए जा रहा हूँ इसकी तैयारी के लिए आ नहीं सका। मुझे क्षमा करना माँ।

संगीता -- तुम पढ़ने के लिए जाओ। महान से महान बनकर आओ। भगवान तुम्हें हमेशा खुश रखे। हाँ, कॉलेज में जाकर सभी के साथ भाई बहिन का बर्ताव रखना सोहन तू क्या करेगा।

[इतने ही में बाहर से आवाज आती है]

मोहन — अच्छा मां, मैं चल जाऊँ।

संगीता - जाओ बेटा [मोहन चला जाता है]

(सोहन भी बाहर चला जाता है और एक चिट्ठी लेकर आता है)

संगीता - क्या है रे बेटा।

सोहन -- मामाजी की चिट्ठी आयी है तुमको लिखा है --

संगीता क्या लिखा है — पढ़कर सुना।

सोहन — चिट्ठी पढ़ता है —

प्यारी बहिन संगीता, तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर बहुत बहुत खुश हुआ। सोहन की पढ़ाई के प्रबन्ध के लिए मैं २०/ २०/ रुपये दो ट्यूशन ठीक कर दिए हैं वह यहाँ कॉलेज में पढ़ेगा। चिट्ठी पाती भेजती रहना। और क्या लिखूं। राम को मेरा आशीर्वाद देना। इति

तुम्हारा भाई
कमल

राजहंस

संगीता- मैं बहुत-बहुत खुश हूँ। तुम लोग सब कल सबेरे की गाड़ी
में एक साथ जाओ।

सोहन -- माँ! मैं तुमको बीमार अवस्था में छोड़कर कैसे जाऊँगा।

संगीता - (अपने को सम्भालते हुए) बेटा! इस दुनिया में कौन किसका?
आए हैं अकेले, अकेले जाएंगे भी अकेले। माँ बाप भाई बहिन
माया का बन्धन है। इसे तोड़ना आसान नहीं परन्तु जो तोड़
सके वह दुनिया में चमक जाता है। कुटुम्ब माया का बन्धन
तोड़कर अमर हो गए गोविन्दचन्द्र माया का बन्धन काट
कर योगी बने और महान बने। रामचन्द्र माँ बाप को छोड़कर
बनवासी हो गए। इसलिए अगर तुम भी मेरे से अलग
होकर महान बन सको तो कोई पाप नहीं। तुम इस अमूल्य
समय को नष्ट मत करो। तुम तैयारी करलो और कल
सुबह चले जाओ।

सोहन -- (रोकर) नेता सुभाष, चन्द्रशेखर, सरदार पटेल, गांधीजी
आदि महान नेता जन्मभूमि के प्यार के लिए शहीद हो
गए। क्या जननी जन्मभूमि से बड़ी नहीं है? अगर बड़ी
है तो क्या उसके लिए कुछ नहीं किया जा सकता।
अगर नहीं कर सका तो क्या भगवान मुझे क्षमा करेंगे।
माँ मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता, छोड़ नहीं सकता।

संगीता - (कठोर दर्द भरी बोली) क्या बचपन की भांति आज
भी तुम मेरे स्तन का दूध पी रहे हो? क्या नहीं

जानते हो। इसलिए कि लड़का बड़ा होने से माँ उसे प्यार नहीं करती। जिस माँ का प्यार विशाल समुद्र के समान है वह माँ पुत्र को प्यार से वंचित कर सकी तो क्या तू उसे भूल सकता है। जा मेरे बेटा जा, मुझे भुलाकर पढ़ने के लिए जा।

सोहन — माँ! तुमने मुझे मजबूर किया। मैं जाऊँगा। भगवान मेरी माँ को तुरन्त अच्छा कर दे। रोते हुए शहर में जाऊँगा, और वहीं हँसते हुए चेहरे को देखकर याद करता रहूँगा — अच्छा माँ! मैं जाने की तैयारी करूँ।

संगीता — हाँ बेटा (रोती है एकान्त में)।

[तृतीय दृश्य]

सोहन — हे मेरे प्यार के गाँव, सुख के नीड़, आज तुझे छोड़कर जाना होगा। बचपन से लेकर तेरी गोदी में पल रहा था और लाडला बन गया था। आज तुझे छोड़ने के लिए मैं मजबूर हो गया हूँ तो क्षमा करना। हे ग्रामदेवता! मैं तुमसे अपने लिए कुछ नहीं माँगता, सिर्फ मेरी माँ को हमेशा खुशी में रखना।

मोहन — (प्रवेश कर) यार! अरे यार तुम अभी तक यहीं हो, चलो

राजहंस

— गाड़ी को देर हो रही है। चलो 'माता जी' से विदा ले लें। और ये देखो, माताजी तो आ ही गईं।

संगीता — हाँ बेटा। तुम दोनों को विदा देने के लिए आज भगवान ने मुझे थोड़ा अच्छा कर दिया है। चलो कुछ खाना खा लो तुम लोगों के लिए बनाया है।

मोहन — माताजी। सोहन तो तुम्हारे हाथ का खाना हो दिन खाता है। आज मेरी मां ने इसको — ले आने के लिए भेजा है। आज ये नहीं खाएगा।

संगीता — अरे। तुम्हारे लिए आधी रात से उठकर 'मालपुआ' और खीर बनायी हूँ कम से कम थोड़ा तो खा लो। चलो - चलो - न

सोहन — चल भाई, माँ की बात मान ली जाए।

(सब भोजन घर में जाते हैं)

संगीता — (एक मालपुआ सोहन को और एक मोहन को मुँह में देकर)। अब मुँह बंद करो।

मोहन + सोहन — (मालपुआ को खाकर) .. हा .. हा .. हा .. हा .. कितनी प्यारी माँ हमारी - एक तो तुम लो (दोनो मिलकर मुँह में डाल देते हैं)

रामू (नौकर) — (बाहर से) मोहन - मांजी बुला रही हैं।

मोहन — देखो मां। रामू बुलाने के लिए आया है। अब चलें चलो सोहन (मां को प्रणाम करते हैं)।

संगीता — कितने प्यारे भोले हैं दोनो। भगवान, दोनों को साथ साथ रखो।

राजहंस

[चतुर्थ दृश्य]

रेनु -- (चमचम, रसगुल्ला, सन्देश, रबड़ी आदि लेकर के बैठी हुई है) मोहन गया तो अभी तक नहीं आया (इतने ही में सोहन मोहन आ जाते हैं) अरे ये आगए - आओ। बैठो देखो है सबकुछ - कितनी देर से प्रतीक्षा कर रही हूँ। क्या सोहन मुझे --

सोहन बस, माता जी, बोलो मत कुछ, खिलाओ आज कुछ अपने हाथ से। नहीं तो हम लोग खाना खत्म करके देंगे।

रेनु - अच्छा बाबा, अच्छा, ये लो - (एक चम चम सोहन को बाद में एक मोहन को दिया। मोहन दांत में आकर उंगली को रवा लिया)। हाय मेरी अंगुली चली गई

मोहन -- हाँ तुम्हारी अंगुली भी चम चम बन गयी है (दोनों हंसने लगे)
(खाना समाप्त होने के बाद)

रेनु चलो। शिव जी के पास, प्रणाम करके विदा लेना (दोनों जाते हैं और माता जी सिन्दूर, चावल आदि लगाकर विदा करती है। दोनों माँ और चाचा रेनु लेकर निकल जाते हैं)

रेनु -- (रोने लगती है)

[पांचवा दृश्य]

(२० साल बाद)

(सोहन के कमरे में उनके कई शिष्य खड़े हैं, सोहन बिछावन पर सोया हुआ है उसे टी० बी० हो गई है, लड़के सब रोने जैसी सूरत में खड़े हैं)।

राजहंस

सोहन – भाई, अशोक। मुझे याद आया। मेरा दोस्त मोहन टी॰बी॰ का स्पेशलिस्ट डाक्टर है। वह दिल्ली में है। उसका फोन नं॰ २८ २८ २८ है। जाओ फोन कर दो - देखो बोलना आपके बचपन के दोस्त सोहन को बहुत बड़ी बिमारी ने पकड़ लिया है, अब उनके बचने की उम्मीद कम हो रही है और वे बनारस में है। जाओ वह फोन पाते ही शीघ्र आएगा।

अशोक – जी हाँ। अभी जा रहा हूँ (जाता है)

सोहन – प्यारे भाइयो गणित के प्रोफेसर के नाते मेरे दिल में हो सकता है कि [illegible] का भाव नहीं है पर मैं जानता था कि है। प्यार क्या करूँ। यदि मुझसे कोई गलती हो गई हो तो उसे भूल जाना। मुझे क्षमा कर देना।

सभी पात्र – प्रोफेसर साहब ऐसे कुछ मत कहिए। हम शर्मिन्दा न कीजिए। हमारा दोष क्षमा कीजिएगा। आपकी हमें [illegible] याद आते रहे।

अशोक – (घबराकर) सर, डाक्टर मोहन फोन पाकर ही आ रहे हैं। गाड़ी से हैं अतः जल्दी ही रवाना हो रहे हैं।

सोहन – मैंने बताया था न, वह बचपन का दोस्त है। मुझे भूल नहीं सकता। (खाँसी उठने लगती है और खून आता है)। भाई साहब अब तो गाड़ी आ गयी --- मैं जा रहा हूँ। मेरे मोहन के आने पर बताना - दोस्त चले गए। आपको नमस्ते कर गये हैं और

गलती के लिए माफी। हाँ मेरे दोस्त आ रहे हो आ रहे हो।
(फिर खून वमन) दोस्त दोस्त खून खून दोस्त
(मर जाता है)

मोहन -- (मोटर साइकिल से एक्सीडेंट) दोस्त,
मेरे बचपन के यार मुझे माफ करना। मैं तुम्हारे पास
पहुँच न सका, पहुँच न सका मैं आ रहा था
दोस्त ..

•— समाप्त —•

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धि ॥ (माल)
— कालिदास

अर्थात् पुरानी होने से ही कोई वस्तु श्रेष्ठ नहीं हो जाती और नई होने से वह गर्हित नहीं बन जाती। विवेकशील व्यक्ति दोनों की परीक्षा करके उनमें से एक को अंगीकार करता है जबकि मूर्ख लोगों की बुद्धि दूसरों के निर्देश से शासित होती है।

भाषा और भाषा-समस्या

ले. - धर्मवीर
वेदमहाविद्यालय.

भारत का शिक्षित वर्ग इन बातों से अनभिज्ञ नहीं कि भारत के सामने अन्य समस्याओं के साथ 'भाषा-समस्या' भी भयंकर रूप से खड़ी है। वैसे तो यह देन हमारे नेताओं की है जिन्होंने अपने आलस्य प्रमाद एवं स्वार्थ वश यह फल हमारे सम्मुख ला खड़ा किया। इस का हल सोचने से पहले हमें भाषा के दृष्टिपक्ष में विचार करने से ही हल एवं समस्या के समझने में सहायता मिल सकेगी।

भाषा क्या है? भाषा प्रत्येक मानव-जाति और राष्ट्रों के मध्य की वह कड़ी है जिससे परस्पर भावों विचारों का आदान प्रदान किया

राजहंस

जाता है। यह सर्वविदित है कि यह भाषा मानव के साथ ही उदित हुई थी
और वह आज नाना रूपों में और नाना उच्चारणों में विभक्त है पुनरपि
जो इस पक्ष में संदेह करते हैं हम उनके लिए विश्लेषण करके
इस बात का पूरा ज्ञान करा सकते हैं क्योंकि यदि हम समझें कि
मानव के प्रादुर्भाव के साथ ही भाषा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ तो
हमें उस समय की कल्पना करनी होगी जब भाषा के बिना मानव ने
अपने नैसर्गिक अधिकार जिज्ञासा एवं विचार को तिलांजलि
दी होगी क्योंकि मानव का यह स्वभाव है कि वह नवीन वस्तु
एवं वैचित्र्य के विषय में स्वाभाविकतया सोचने के लिए उत्सुक
होता है। और यह सोचना या चिन्तन बिना किसी भाषा माध्यम के
आधार पर सम्भव नहीं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आप स्वयं विचार
करें और वह इस प्रकार भी हो जिसमें कोई भाषा माध्यम न हो।
फिर भी यदि कुछ प्रतिपक्षी यह तर्क दें कि मानव ने प्रारम्भ में
संकेतों के द्वारा अपना कार्य सिद्ध किया, परन्तु हमारे विचार में यह
तर्क न होकर तर्काभास मात्र है क्योंकि किसी वस्तु के जिज्ञासा
ग्रहण परित्याग का विचार भाषा के बिना नहीं हो सकता और
बिना विचार संकेत भी सम्भव नहीं। तब यही पक्ष स्वीकार

राजहंस

स्वीकार करना होगा कि मानव के प्रादुर्भाव के साथ-साथ भाषा का भी प्रादुर्भाव हुआ तो मन प्रश्न यह उपस्थित होगा कि यह भाषा एक थी या अनेक और यह कि सबको प्राप्त हुई। हम पूर्व इस सामान्य विचारणा पर विचार करेंगे कि यह भाषा एक थी या अनेक। एक मत इससे पूर्व अनेक पक्ष पर विचार करते हैं। मान लें कि उस तथा आदि समय में अनेक भाषाएं थीं तो उनका निर्माण किसने किया? यदि सबने अपने पक्ष का निर्माण किया तो मानव की उस स्वल्प संख्या में सामाजिकता की हानि होगी और प्रश्न यथापूर्व होगा। अतः हमें स्वीकार करने को बाध्य होना होगा कि यह भाषा एक होगी और यह विस्तृत जनों एवं स्थानों को प्राप्त होती हुई आज की दशा को प्राप्त हुई होगी, किन्तु एक भाषा प्रश्न पर यह शंका है कि वह भाषा कैसे प्राप्त हुई। यदि मान लें सबने मिलकर बनाई तो प्रश्न होगा कि उसके निर्माण में विचार-विनिमय का माध्यम क्या रहा होगा? तो भी स्थिति यथापूर्व होगी अतः यहां हमें यह स्वीकार करना होगा कि वह भाषा हमें किसी महत् के द्वारा प्राप्त हुई। "यही पक्ष हमारे लिए सर्वतोभद्र हो सकता है। और उस एक भाषा, आदि भाषा का नाम क्या रहा होगा उसके लिए हम ऐतिहासिक पक्ष का अवलम्बन करके यह निश्चय करेंगे कि वह भाषा संस्कृत ही रही है। और जो कि हमें अपने कल्पित महत् सत्ता के द्वारा प्राप्त हुई तो यह प्रश्न स्वाभाविक:

राजहंस

कि उसका माध्यम क्या रहा होगा जिसके द्वारा वह इन तक पहुँच सकी उसके लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वह माध्यम अन्तःकरण ज्ञान था भौतिक नहीं।

इस प्रकार हमने एक आशा प्राप्त की और उसके आश्रय पर हम आगे बढ़े। शंका यह सम्भव है कि वह अब तक एक ही क्यों न रही नाना क्यों हो गई तो इसका उत्तर यही युक्तियुक्त होगा कि मानव के साथ एक और शर्त है वह है उसकी स्वातन्त्र्य की जिसके कारण आज यह अनेकता दृष्टिगोचर हो रही है। मानवजीवन का स्वातन्त्र्य जीवन है जिसके बल पर वह निर्माण या पतन किसी को चुन सकता है किन्तु यह एक अटल सत्य है कि निर्माण ही कल्याण का हेतु है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण मानव का अन्तःकरण है।

अतः जब हमारा उद्देश्य निर्माण अथवा उन्नति होगा तो उसके लिए हमें इस प्रकार के अवलम्बन को ग्रहण करना होगा जो सदा हमें अपने उद्देश्य की ओर प्रेरित करता रहे और जीवन मार्ग जो एक निम्नगा की भाँति निम्नता की ओर सरलता से जा सकता है उसे उस ओर से रोककर अपने उद्देश्य की ओर उन्नति की ओर जाने को प्रेरित करता रहे और वह अवलम्बन सर्वदा सर्वत्र आवश्यक है जिसके सम्मुख हम अपना समर्पण कर हम प्रेरित करने के लिए हम उसे चुनते हैं वह पारिवारिक जीवन के लिए पिता, विद्यार्थी के लिए आचार्य, भक्त के लिए भगवान, जाति एवं राष्ट्रों के लिए नेता और संचालक हुआ करती है।

राजहंस

इस प्रकार अब हम अपने लक्ष्य की ओर आते हैं तथा विचारते हैं कि एक मानव के लिए भी भाषा की आवश्यकता होती है तो इतने बड़े समुदाय के लिए उसकी अनिवार्यता सुनिश्चित है क्योंकि किसी समुदाय को एक उद्देश्य की ओर ले जाने के लिए तीन प्रमुख बातों की आवश्यकता होती है——

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' अर्थात् नियम वाणी विचार और यही कारण था कि प्राचीन समय में भारत उन्नत था किन्तु आज वैसा नहीं है इसका कारण है कि वह साधन को साध्य सिद्ध करने की चेष्टा कर रहा है जैसे प्रत्येक धर्म और उन धर्मों में भी उपधर्मता। यहाँ पर थोड़ा गम्भीर होकर एक मनोवैज्ञानिक तथ्य को खोज करना अप्रासंगिक न होगा। जैसे धर्म हैं इन धर्मों में भी उपधर्मता इस कारण आई कि उन्होंने अपने विचार स्वातन्त्र्य केवल को साधन को साध्य सिद्ध किया इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हिन्दु धर्म है किन्तु इसका थोड़ा अपवाद देखें तो मुसलमान हैं क्योंकि उनके यहाँ विचार स्वातन्त्र्य नहीं इस कारण उसका कई लाभ भी प्राप्त हुए जिन्हें सब प्रत्यक्ष कर सकते हैं।

इस प्रकार हमने अब तक भेद के दूर्य पक्ष का अध्ययन किया और निश्चय किया कि किसी भी समुदाय को उन्नत होने के लिए एक भाषा एक उद्देश्य एवं नियम और विचार एक होने आवश्यक हैं। अब वह एक भाषा किस प्रकार सम्भव है उसके क्या आधार हैं जिन्हें सामान्य अपनाया जाता है। उस पर विचार करते हैं——

यदि हम भारत की भाषा समस्या को एक सरल रूप से

राजहंस

समझना चाहें तो हमारे लिए एक छोटा सा उदाहरण पर्याप्त होगा -
"आप कल्पना कीजिए कोई व्यक्ति जो कभी अत्यन्त उन्नत रहा है
किन्तु वर्तमान में वह अपने को भूलकर आलस्य में पड़ा सो रहा है
और सोने से पूर्व उसने अपने घर का द्वार जो कि पूर्व की ओर था अर्थात्
वह प्रकाश एवं प्रेरणा प्राप्त करके उन्नत होता था। बन्द किये है।
किन्तु उसके अन्य सहचारी जो उसके उपार्जित संस्कार हैं उसे
बार बार झकझोर कर जगाना चाहते हैं। जब वह कुछ जागता है और
पश्चिम के झरोखे से आते हुए प्रकाश को पाकर अपने को धन्य
समझ रहा है और स्वयं को पश्चिम का ऋणी समझ रहा है।"
तो आज यही दशा हम भारतवासियों की है जो सदियों के पश्चात्
उन्नत होकर पश्चिम से प्राप्त हो रहे प्रकाश को प्राप्त कर अपने
को उसका ऋणी समझ रहे हैं पर भूल बैठे हैं कि इससे भी कहीं
उत्तम प्रकाश हमें पूर्व की ओर होकर मिलता था और फिर से मिलता है
यह भी सम्भव है कि जब हम अपने घर का पूर्व द्वार खोलें
और अपने सच्चे आलोक से परिचित हों।

यह तो आवश्यक है कि जैसे हम मकान बनाते समय चारों
ओर खिड़कियाँ रखते हैं तभी हम अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर
सकते हैं किन्तु खिड़कियों के होने का यह तात्पर्य नहीं कि अपना
द्वार बन्द कर दिया जाए। इस प्रकार हमें अपने मुख्य द्वार के
साथ साथ अन्य वैदेशिक भाषा रूपी खिड़कियों से भी अपने घर
को उन्नत और शोभित करना चाहिए।

राजहंस

यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि मनुष्य आस पास की वस्तुओं वातावरण एवं विचारों से निरन्तर प्रभावित होता रहता है और उन्हें भी प्रभावित करता है वह आचार विचार उच्चारण (?) आदि सभी प्रकार होते हैं और जब मानव अपने से इतर वातावरण में रहता है तो उसका यह अवश्यम्भावी परिणाम है कि यदि वह इतना प्रबल है तो स्वयं से वातावरण को प्रभावित कर यदि नहीं तो वातावरण से स्वयं प्रभावित हो। तो इस प्रकार जब शनैः शनैः हमारी विद्या और ज्ञान को अपने अज्ञान और पश्चात् विदेशी शासन ने आक्रान्त कर दिया और हमें इस प्रकार के वातावरण से प्रभावित किया जिसमें हम स्वयं को भूल गए और आज भी भूले हुए हैं और यदि हम ध्यान पर जब भी अपना कल्याण चाहेंगे तो हमें अपने को ही अपनाना होगा। हम अज्ञान में इतने अंधे हो गए कि अपने को प्रभावित करने वालों के उद्देश्यों को भी न जान सके और अपने गौरव को भूलकर उनके प्रचालित कार्यों की पूर्ति में अपने को गौरवान्वित समझने लगे इस हीनता को प्रगट करने के किसी कवि के ये शब्द अत्यन्त उपयुक्त हैं – 'जिसको न निज गौरव, तथा निज देश का अभिमान है।

वह नर नहीं नर पशु है और निरा मृतक समान है।।'

इस कारण यदि अपनी भाषा और संस्कृति देश को उन्नत देखना चाहते हैं। तो अनिवार्य है कि हम अपनी भाषा को अपनायें। अस्तु हिन्दी के राजभाषा न होने में सर्वप्रथम यह हेतु दिया जाता है कि है, यह भाषा अभी अविकसित भाषा है। और इसमें वर्तमान आवश्यक

राजहंस

शब्दों की न्यूनता है।

आज हमें स्वतन्त्र हुए १८ वर्ष हो गए इतने समय में किसी नयी भाषा को भी उन्नत किया जा सकता था परन्तु हिन्दी तो भारत के ४२% की भाषा थी उसकी उन्नति में इतने समय में सभी प्रकार की समस्याओं का हल सम्भव था परन्तु जब विकास भावना हो न हो तो क्यों विकास इतना विकसित हो गया कि वह स्वयं उसे विकसित करे।

क्योंकि हम देखते हैं कि नितान्त अविकसित भाषाएं भी बहुत शीघ्र विकास को प्राप्त हुई उनमें यही कारण था कि वहाँ उनके विकास की भावनाएं वर्तमान थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस्राइल की हिब्रू भाषा और इण्डोनेशियाई भाषाएं हैं। इसलिए यह कोई कारण नहीं जो हिन्दी को न्याय कोटि में ला सके और शब्दों की कमी है इस हेतु का खण्डन स्वयं हो जाता है जबकि कोई भाषा प्रयोग में नहीं आएगी तो उसका शब्दकोष किस प्रकार बढ़े को प्राप्त हो। हम इतिहास के पन्ने पलटे तो ज्ञात होगा ~~कि फ्रांसीसियों~~ कि अंग्रेजो ने फ्रांसीसियों के अपमान को न सहन कर अविकसित अपनी भाषा को न्याय कार्य में प्रमुखता दी। हम यदि अंग्रेजों को ही लें तो उन्होंने कभी भी अन्य भाषा इसलिए नहीं अपनाई कि उनकी भाषा अविकसित है।

२ भारत एक अनेक भाषा भाषी देश होने के कारण अहिन्दी भाषी इसका विरोध करेंगे? यह भी कोई प्रश्न नहीं

राजहंस

क्योंकि यह प्रजातन्त्र का युग है अतः ४२% हिन्दी भाषी होने से जब इनके समकक्ष में अन्य न होने से यह निश्चित है बहुमत इनका है। यदि हम दुर्जन तोष न्याय से यह मान लें कि अच्छा हिन्दी राजभाषा न हो क्योंकि अन्य इसका विरोध करते हैं तो हम १४ भाषा भाषियों से कहें हमें तुम्हारी भाषा स्वीकार है यदि उसका भी विरोध न हो तो पुनः निर्णय निर्णीत है।

और फिर भी यदि वे कहें कि हिन्दी थोपी जाती है। तो क्या वे अंग्रेजी का समर्थन करके हिन्दी भाषियों पर नहीं थोप रहे? यह सब पक्ष खण्डित होने पर भी मेरे विचार से यहाँ कि जनता कोई विरोध नहीं करती अपितु नेता गण हमारे अपने तुच्छ स्वार्थों की रक्षा के लिए इस प्रकार कर रहे हैं। क्योंकि हम देखते हैं कि एक बंगाली अपने देश में रहकर चोटी जैसे भी बंगाली भाषा में गौरव समझता है परन्तु उसी भारत के भाव भाषा और संस्कृति पर सार्वजनिक कुठाराघात करने से नहीं हिचकता यदि शासक आज भी वे चाहते हैं तो उत्तर भारतीयों का चाहिए कि शठे शाठ्यं समाचरेत की नीति अपनाएँ।

3 इसमें तीसरा हेतु यह दिया जाता है कि यह यह भाषा केवल एक मत से विजयी है "यह पक्ष कोई महत्वपूर्ण पक्ष नहीं) यद्यपि यह भी है यहाँ एक मत शब्द से एक वोट नहीं अपितु मतैक्य से अर्थात सर्वसम्मति से है इस भ्रान्ति का निराकरण हो चुका है।

राजहंस

मेरा विचार है मेरा ही क्यों अपितु सर्वसम्मत कि भाषा-वेश-साहित्य का मानव जीवन पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य है और इसके परिणाम हमारे सामने हैं और उनका निराकरण करना आज हमारे लिए एक समस्या है।

एतदर्थ यदि हम आज अपने राष्ट्र को इस गर्त से निकालना चाहते हैं उन्नत देखना चाहते हैं और भारतीय जनता पल्लवित पुष्पित देखना चाहते हैं तो अपनी भाषा को अपनाना होगा जैसा कि कहा है—

निज भाषा की उन्नति सब उन्नति को मूल।
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

• • •

हिन्दी और हिन्द का वही सम्बन्ध है जो प्राण और तन का। हिन्द तन है तो हिन्दी प्राण, हिन्द नदी है तो हिन्दी उसका जीवन यानी जल। हिन्द पुरुष है तो हिन्दी नारी। एक को दूसरे से कैसे अलग किया जा सकता है। — गोपाल प्रसाद व्यास

चेतावनी

— शंकर सिंह वैशालकार
M.A. (प्रथम वर्ष)

सुन लो अयूब कान देकर हमारी बात,
भारत के वीर मतवाले हैं, निराले हैं।
टूट पड़ते हैं जिस ओर वज्र के समान,
होता विनाश, हम विषैले व्याल काले हैं।
तुमने जो चली है चाल होगा बिहाल हाल,
काल के समान गाल फैले दन्त वाले हैं।
लाल-लाल लोचनों में, जलती है ज्वालमाल,
पाक के पतंग-पुञ्ज जलने ही वाले हैं।

चर्चित है चर्चा चञ्चला की चहुँ ओरन ते,
चारु चञ्चरीक भी इसका गान गाते हैं।
इसके प्रकम्पन से होते प्रकम्पित शत्रु,
पाते पराजय नित्य पीठिका दिखाते हैं।
क्रूर कुटिलों के कंठ कटते हैं कट-कट,
कालिमा कलंक के भी कूट कट जाते हैं।
भूत भग जाते हैं प्रभ्रष्ट भावनाओं के औ,
दुष्ट दानवों के दांत खट्टे पड़ जाते हैं।

भारत का विश्व शान्ति में योगदान

— रघुनन्दन प्रसाद
विज्ञान महाविद्यालय
१२वीं श्रेणी

हमारे देश
से ही शान्ति का साम्राज्य
आज भी संसार के समस्त
कहलाता है। हमारे
तियों को जन्म दिया
मार्ग दिखाकर शान्ति
उनका नाम यहाँ पर
दयानन्द सरस्वती,
उनके अनुयायी पं. नेहरु
जन्म लेकर हमारे देश
भारत को जो
मिली वह लड़ाई, गोला
बारूद के द्वारा प्राप्त
और फिर अंग्रेजों की एक
बड़ी शक्ति के सामने
सकती थी। बहुत से
हाथ धोना पड़ा। कितनों
भारतीय भी देशभक्तों

भारतवर्ष में प्राचीन काल
आच्छादित रहा है और
देशों में शान्तिप्रद देश।
देश ने ऐसे महाविभू-
जिन्होंने देश को सच्चा
की शिखा पर पहुँचाया,
उल्लेखनीय है। स्वामी
राष्ट्रपिता गांधी और
आदि जैसे महापुरुषों ने
का नाम उज्ज्वल किया।
सदियों पश्चात स्वतंत्रता
बारूद, तोपों और बमों
होना असम्भव थी।
विशाल सेना और एक
कहाँ तक सम्भव हो
लोगों को अपनी जान से
को भी जैसे आजाद,
को फांसी पर लटका

राजहंस

दिया गया परन्तु फिर भी स्वतन्त्रता सम्भव न हो सकी। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हमेशा शान्ति से काम करना, अपने कर्तव्य मार्ग पर चलना सिखाया। उन्होंने कहा कि - सत्यं वद। धर्मं चर। अहिंसा परमोधर्मः। इन सिद्धान्तों का प्रत्येक आदमी को अनुकरण करना चाहिए। इन्हीं साधनों को अपनाकर हमारे राष्ट्रपिता बापू तथा उनके अनुयायियों ने अंग्रेजों की महान शक्ति की नींव को हिला दिया और उन्हें चंद दिनों में ही भारत से बोरीबिस्तर सहित जाना पड़ा जिनको बड़ी शक्तियां परास्त न कर सकी वह शान्ति रूपी अस्त्र ने शीघ्र ही कर दिखाया तथा हमारा देश सदियों की गुलामी के पश्चात स्वतन्त्र हुआ।

आज विज्ञान का युग है परन्तु इसमें आज भारत भी किसी देश से पीछे रहने वाला नहीं है। दिनों दिन उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। यदि हमारे देश के नागरिक अपने कर्तव्य को अच्छी प्रकार निभाते हैं तो आज किसी भी बात में भारत किसी भी देश के आगे झुकने वाला नहीं है। संसार में नित्यप्रति नये-नये आविष्कार हो रहे हैं। अस्त्र-शस्त्र परमाणु बम तथा हाइड्रोजन बम भी तैयार हो चुके हैं। जिनसे संसार

राजहंस

की शान्ति भंग होने का भय सदैव ही बना रहता है। शक्तिशाली देश दुनिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं। लगता है इस युद्ध में राष्ट्र संसार को काल के कराल गाल में भेजना चाहते हैं।

हमारा देश भी आज वैज्ञानिक तरीकों से नई नई खोजें करने में तत्पर है। और परमाणु तथा हाइड्रोजन तथा हिलीयम जैसे बम भी तैयार हो रहे हैं यही नहीं हमारा देश यदि ईश्वर की कृपा दृष्टि रही तो निकट भविष्य में ही अग्रणीय हो जाएगा। यह सब इसलिए नहीं किया जा रहा है कि शक्ति द्वारा पड़ोसी देशों को हड़प कर लिया जाए परन्तु इस विचार से कि कोई दूसरा देश हमारी शान्ति को छिन्नभिन्न न कर सके और हम अपने देश की सुरक्षा तथा शान्ति को भी स्थिर रख सकें। धन्य है ऐसे भारत को जो आज भी अपनी शान्ति की नीति पर अटल है।

आइये, आगे हम उन कुछ तत्वों पर भी विचार करें जिनसे विश्व की शान्ति स्थायी रह सकती है। हमारे विचार से भारतीय संस्कृति की विशेष देन समन्वय और सद्भावों की जो भावना है वही मूल बड़ी चीज़ है। सृष्टि के आदिकाल से भारत इस मामले में समस्त संसार का गुरु रहा है। संसार के अन्य देश जब सभ्यता की क्षीण सी रेखा को भी नहीं देख पाए थे उस समय भारत में ज्ञान-सूर्य जाज्वल्यमान था। ज्ञान-ज्योति सर्वप्रथम भारत में ही प्रज्वलित हुई ऐसी ही विश्वकवि

राजहंस

धारणा रही — 'प्रथम प्रभात उदय तव गगने, प्रथम साम रव तव तपोवने'

स्यादवाद की व्यापक दृष्टि सर्वप्रथम भारत को ही प्राप्त है। भारत के ही महान व्यक्तियों ने संसार को पढ़ाया कि सृष्टि के सभी कणों में शान्ति की ज्योति व्याप्त हो रही है। इसी देश के ऋषियों ने सबको सिखाया कि "सब प्राणियों को अपने ही समान समझो।" जब तक सबके हृदयों में यह भावना न आयेगी तब तक शान्ति कहाँ? भीतरी साम्य के बिना बाह्य साम्य निष्फल है। हिरोशिमा देशों की शक्ति के आतंक से 'शान्ति' स्थापित कदापि नहीं हो सकती। यह नीति परस्पर भय और अविश्वास को जन्म देती है।

एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए यही भारतवर्ष की विश्व को एक अनुपम देन है। भारत ने बताया कि शान्ति के लिए शील, शक्ति और सौन्दर्य के समन्वय से ही शान्ति की भावना स्थिर रह सकती है। शील के बिना शक्ति और शक्ति के बिना सौन्दर्य अपनी रक्षा कभी भी नहीं कर सकते। शील के बिना ही तो हिरोशिमा जैसे सर्वनाश की पुनरावृत्ति होती है। अन्य देशों को भी भारतवर्ष की भाँति और अध्यात्मवादी नीति पर चलने की आवश्यकता है। भारत ने भी हमेशा शक्तिशाली बनना चाहा परन्तु दूसरे के अधिकारों का अनुचित शोषण करके नहीं अपितु उसकी नीति 'परेषां परिपीड़नाय' न होकर 'परेषां रक्षणाय' रही।

राजहंस

आज भी हमारा भारत शान्ति का प्रबल पक्षपाती है, जियो और जीने दो का प्रबल समर्थक है किन्तु जब कोई शत्रु अपने बल के मद में आकर राष्ट्र की सीमाओं को आक्रान्त करता है तो उसके लिए भारत ने तलवार उठाना भी सीखा है। वैसे तो वह अन्तर्राष्ट्रीय जगत में शान्ति और अहिंसा का प्रबल समर्थक है और विश्व में शान्ति स्थापना में उसका बहुत बड़ा योगदान भी है।

— रंग व व्यंग —

"क्या कहा, मेरी कविता आप में से किसी की भी समझ में नहीं आई! ठीक है, फिर मैं इसे छायावादी कविता कहूँगा।"

— परिणाम —

शिक्षक ने छात्र से पूछा- "अगर भूकम्प आए तो उसका क्या परिणाम होगा, जानते हो?"

"जानता हूँ सर," छात्र ने उत्तर दिया "स्कूल बन्द हो जाएगा।"

राजहंस

देश के लिए

हम भारतवासी सब कुछ दे सकते हैं पर एक वस्तु शरीर में प्राण रहते हुए कभी नहीं त्याग सकते वह है हमारी अपनी स्वतन्त्रता।

— भगवान तिलक

●

दोषी वही नहीं जो दण्ड देता है, आक्रमण करता है, अन्याय करता है, उससे भी बड़ा दोषी वह है जो चुपचाप उसे सह लेता है।
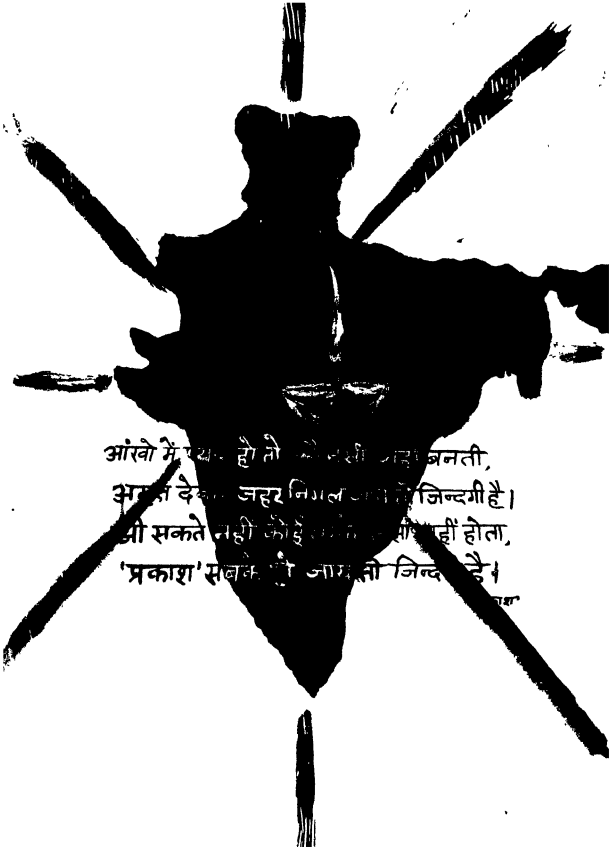
— महात्मा गांधी

●

उसे अपने धर्मग्रंथ समुद्र में फ़ेंक देने चाहिए, उसका जप-तप सब ढोंग है जिसमें अपने देश के लिए प्राण देने की क्षमता नहीं है।

— अरविन्द

●

शत्रु का लोहा गरम भले ही हो जाए, पर हथौड़ा तो ठण्डा रहकर ही काम दे सकता है।

— सरदार पटेल

●

क्या लिखूँ ?

— रघुवीर मुमुक्षु व्या० आचार्य

> मनुष्यत्व क्या है ? किन गुणों से उसकी प्राप्ति सम्भव है। प्रस्तुत लेख में इसी का समाधान है। — सम्पादक

हृदय समुद्र में बार बार प्रश्नोर्मि उठकर इसे आलोड़ित कर रही है। जलधि में तरंग उत्पन्न होती है, किनारे को छूकर नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार हृदयार्णव में प्रश्नवीचि उठती रहती है तथा नष्ट होती रहती है। प्रश्न होता है क्या लिखूँ ?

इस छोटे से प्रश्न से शरीर कांप जाता है, मन व्याकुल होता है। तथा किंकर्तव्य-विमूढ़ता की देवी सामने खड़ी दिखती है किन्तु प्रश्न ज्यों का त्यों ही रहता है। फिर 'क्या कुछ लिखूँ ही नहीं अथवा क्या की परवाह न करके कलम चलादूँ ? नहीं ! नहीं । 'क्या की परवाह किये बिना कुछ भी लिखना भूल होगी। सचमुच भूल होगी।

प्रश्न क्यों उठता है ? प्रश्न होना स्वाभाविक ही है क्योंकि किसी भी कार्य को करने के लिए अधिकारी की आवश्यकता है। अनाधिकारी हाथों में गया उत्तरदायित्व सर्वनाश का मूल है। तो क्या मैं लिखने का अधिकारी हूँ ? प्रश्न उठा, हृदय मन्दिर में चक्कर लगाया किन्तु निराशापूर्ण शब्दों में कड़ी फटकार लगती है - नहीं तू अधिकारी नहीं। क्यों ? जबकि स्वतन्त्र भारत में प्रत्येक मानव को बोलने व लिखने का अधिकार है। तो मैं

राजहंस

अधिकार रहित क्यों ? तो क्या तू सच्चे अर्थों में मनुष्य है ? मन को टटोल, सोच समझकर उत्तर दे। यदि वस्तुतः तू मनुष्य है तो तू कुछ भी लिख डाल नहीं तो तेरा एक शब्द लिखना भी भूल होगी।

यहाँ से भी वही करुण ध्वनि आकाश को गुञ्जित करती हुई कह रही है – नहीं, तू मनुष्य नहीं है। क्यों मैं मनुष्य क्यों नहीं ? मेरी आकृति भी तो मनुष्यों जैसी है। देख ! आकृतिमात्र से कोई भी मनुष्य नहीं बन जाता अपितु मनुष्य की परिभाषा तो महर्षि यास्क कर रहे हैं। ध्यान से सुन -- 'मत्वा कर्माणि सीव्यति' अर्थात् जो विचार कर कर्म करे, अंधाधुंध न करे, वही मनुष्य होता है। अब बतला क्या तू सभी कार्य विचार पूर्वक ही करता है ? अहो! अन्तिम बार भी वही निराशा कि ध्वनि उठी, तथा हृदय पर वज्र प्रहार करती हुई कह गयी – नहीं तू विचारपूर्वक कर्म नहीं करता है।

१. सोच, विचार, मनुष्य बनकर क्या तू कभी असत्य का आश्रय ले सकेगा ? नहीं, उस समय तेरा उपास्य देव सत्य ही बन जाएगा। असत्य पिशाच काला मुँह करके दूर दिशा में भाग जाएगा। उस समय तेरे सामने यही वाक्य होगा – 'सत्यं वद' - यदि तू सत्य की उपासना कर लेगा तभी मनुष्य बन सकेगा अन्यथा केवल नरतन भारी ही है। अब बतला क्या तूने जीवन में सत्य की उपासना की है ? वही अन्तर्ध्वनि आई और कह गई -- नहीं। तूने तो सत्य से विरोध रखा है। पग-पग पर तेरा शरण्य देव असत्य ही रहा है फिर तू कैसा मनुष्य ? यदि मनुष्यत्व को पाना है तो सत्य को पकड़ले; यह सीढ़ी का प्रथम डण्डा है।

राजहंस

२ मनुष्य बनकर क्या तू हिंसा का आश्रय ले सकेगा? नहीं, उस समय तो तू अहिंसा की मूर्ति बनकर रहेगा। अरे देख! अपने पूर्वजों को देख- अहिंसा के पुजारी भगवान् दयानन्द जो कि प्राण घातक को भी रक्षार्थ थैली पकड़ा देते हैं किन्तु तू तो मन, वचन कर्म से प्रतिक्षण हिंसा करता रहता है। थोड़ा सा भी अनिष्ट करने वाले के प्राणों का भी तू ग्राहक बन बैठता है। फिर मनुष्य कैसा? यदि मनुष्यत्व पाना है तो अहिंसा का मार्ग अपना ले यह, सीढ़ी का दूसरा डण्डा है।

३ मनुष्यता के लिए तीसरी आवश्यक वस्तु अस्तेय है। तो क्या तू मन वचन कर्म से स्तेय का त्याग करता रहा है? क्या तूने 'परद्रव्येषु लोष्ठवत्' दृष्टि रखी है? अरे! यहाँ भी असफल ही रहा। तेरा जीवन तो स्तेय से परिपूर्ण है यदि मनुष्य बनना है तो आज से ही अस्तेय का व्रती हो जा। फिर देख तू कितना शीघ्र मनुष्य बनता है।

४. इतना उतावला मत बन। जरा और भी सुन ले! क्या तू कभी क्रोध तो नहीं करता? हरे! हरे! आपने यह क्या प्रश्न पूछ डाला? मैं तो उसी विषधर की तरह हूँ जो दिन रात फूँ फूँ करता रहता है, जो जरा से दबाव से ही प्राणों का ग्राहक बन बैठता है। इसी प्रकार मैं भी अपनी क्रोधाग्नि में अपने अनिष्ट कर्ता को भस्म कर देना चाहता हूँ। अहा प्यारे! इतना क्रोधी बनकर भी तू मनुष्य कहलाना चाहता है? यदि मनुष्यत्व पाना है तो इस विषधर को दूर फेंक दे।

५. अच्छा थोड़ा सा और बतला दे। क्या तू ब्रह्मचर्य का पालन करता है? अपनी स्त्री को छोड़कर शेष नारी जगत को माँ, बहन, या

राजहंस

बेटी की दृष्टि से देखता है? 'मातृवत् परदारेषु' का पालन करता है या नहीं? अरे भगवान्! मत पूछो इस प्रश्न को। मेरी दृष्टि तो सर्वदा पापमयी बनी रहती है। तो फिर तू मनुष्य कैसा? मनुष्यत्व के लिए यह नियम पालना होगा।

६ जरा एक प्रश्न और बतलादे। क्या तू मद शून्य है? क्या किसी से राग द्वेष तो तू नहीं करता? क्या उत्तर दूँ। मेरे तो श्वास श्वास में अहंकार भरा है। अपनी कीर्ति के लिए मैं कुछ भी कर सकता हूँ। रात दिन रागद्वेष के झूले पर मेरा मन झूलता है। अपने द्वेषी को मैं संसार से मिटा देना चाहता हूँ तथा अपने प्रेमी की सदैव रक्षा करता हूँ। अरे पिशाच, तो क्या तू इतने दुर्गुणों का ठेकेदार बनकर भी अपने आपको मनुष्य मानता है? नहीं तू मनुष्य नहीं है। मनुष्यता के लिए इन दुर्गुणों को छोड़ना होगा।

७, अच्छा अन्तिम बार पूछता हूँ यदि सफल हो सके तो हो जा। क्या 'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' तेरे जीवन में है? क्या तू इन्द्रिय घोड़ों की इच्छापूर्ति में तो नहीं फंसा रहता? क्या तू ईर्ष्या रहित है? क्या ईश्वर पर विश्वास करता है तथा परिग्रह शून्य है?

फिर नहीं झन्कार उठी तथा नखशिख तक शरीर को कंपा गयी। क्योंकि यह तो अन्तिम परीक्षा थी। मैं तो इसमें भी असफल हो रहा और यह तो अनर्थ हो गया। मैं तो दिन रात पर धनों को ताकता हूँ। इन्द्रियों पर मेरा उसी प्रकार संयम नहीं

नहीं है जैसे कि बिना लगाम के घोड़े पर कोचवान का संयम नहीं रहता। मैं तो प्राणी मात्र से ईर्ष्या करता हूँ। 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' मेरे जीवन से कोसों दूर है। मैं तो निरन्तर इन्द्रियों के पीछे लगकर पापपंक में धंसता जा रहा हूँ।

भाई! अन्तिम बार भी असफल हो गया। अब तू निश्चयपूर्वक मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं है, तू तो 'धर्मेण हीना पशुभि समाना' के समान साक्षात् पशु ही है। फिर तुझे कैसा लिखने का अधिकार? कैसा बोलने का अधिकार? इस अवस्था में लिख बोल कर तो तू संसार का अपकार ही करेगा। पहले अपने आप को प्रमाण रूप में उपस्थित कर। महर्षि दयानन्द, राम, कृष्ण आदि को अपना आदर्श बना। इसप्रकार के पुरुषों द्वारा लिखा गया है, युगों तक चलता है। यदि तू भी कुछ बोलना चाहता है, कुछ लिखना चाहता है तो वेद माता के 'मनुर्भव' इस शब्द को धारण करले तभी अधिकारी हो सकता।

अरे! मेरी आँख खुल गई। मैं जाग गया। मुझे मनुष्यता का मार्ग मिल गया। जीवन का इतना भाग मैंने व्यर्थ ही खो डाला। मैं तो उन्हीं में से हूँ जो कि 'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति' मैं तो मनुष्य रूप में पशुओं जैसे ही कार्य करता रहा। पतित बना। पापी बना। जीवन में सत्य की आराधना नहीं की। अहिंसा, अस्तेय से दूर भागता रहा। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह को अपना शरणपदेव मानता रहा। परपीड़ा में मुझे आनन्द आया। दुर्बल की रक्षा में कभी भी बल काम न आया। जीवन का उद्देश्य विषय पूर्ति तक ही सीमित रखा। कभी शान्त-

राजहंस

चित्त से परमपिता को याद नहीं की फिर मैं क्या लिखूँ ?

किन्तु इतना होने पर भी मैं निराश नहीं हूँ। मैं हताश नहीं हूँ। मैं जाग गया हूँ 'उद्यानं ते पुरुष नावयानम्' मेरा लक्ष्य बन गया है। मैं निश्चयपूर्वक इन कुरीतियों को भगा दूँगा। मैं निराश क्यों बनूँ जबकि भगवति श्रुति प्यार से कह रही है — 'आ ते हस्तो भामहे' 'आ रोह तमसो ज्योतिः' 'मा ऋतं पन्थामनुगा' वेदमाता का इतना सहारा होते हुए मैं सभी कुछ प्राप्त कर लूँगा। यदि बाल्मीकि श्रद्धानन्द, फूलसिंह आदि ऋषि महात्मा बन गए तो मैं क्यों नहीं बन जाऊँगा ? अवश्य बनूँगा। मैं तब तक मौन हूँ। तभी लिखूँगा। तभी बोलूँगा। अब तो केवल एक ही प्रश्न है — क्या लिखूँ ?

आँख शरीर का दीपक है, इसलिए यदि तुम्हारी आँख स्थिर है तो तुम्हारा सारा शरीर प्रकाश से पूर्ण होगा।

किन्तु यदि तुम्हारी आँख में बुराई है तो तुम्हारे शरीर भर में अन्धकार का साम्राज्य होगा और यदि तुम्हारी अन्तर्ज्योति ही तिमिराच्छन्न है तब तो फिर तुम्हारे अन्दर कितना गहरा अन्धकार होगा ? कल्पना भी नहीं की जा सकती, अतः अपने दृष्टिकोण को सम्यक् बनाना सीखो।

— अज्ञात

जिससे पराये अपने बनें- अपने बनें,
आप ही औरों में समाय तो जिन्दगी है।
क्या खाक उससे जी सकेंगे मरने के बाद
यादों में मर कर जी जाय तो जिन्दगी है।

बम और हम

— जयदेव आर्य वेदालंकार
(अन्तिम वर्ष)

आज जबकि काश्मीर में पाकिस्तान ने हमारे ऊपर आक्रमण कर दिया है तथा दूसरी ओर हमारा शत्रु चीन अपनी सैनिक गतिविधियां बढ़ाने में सन्नद्ध है। यह प्रश्न समुपस्थित होता है कि क्या हम भी अपनी रक्षा के लिए अणुबम निर्माण करें? इसी विषय पर हमें प्रस्तुत लेख में कुछ विचार करना है।

चीन देश ने अणुबम का प्रथम परीक्षण लोपनोर (सिक्यांग) में किया था। ल्हासा में चीन मिसाइलों का अड्डा बना रहा है। उसके पास २५ लाख सेना हर समय युद्ध के लिए तत्पर है। इसके अतिरिक्त ३ करोड़ व्यक्तियों को आवश्यकता पड़ने पर वह युद्ध में झोंक सकता है। इन विकट परिस्थितियों को देखते हुए यह विचार उपादेय है कि भारत स्वरक्षार्थ अणुबम निर्माण करे।

कुछ लोग पञ्चशील, अहिंसा, विश्व शान्ति, हमारी दुर्बल आर्थिक स्थिति आदि बातों की आड़ में अणुबम निर्मा

का विरोध करते हैं।

सबसे पूर्व अहिंसा के प्रश्न को ही लेते हैं। देश का शासन चलाने के लिए सैनिक शक्ति की परमावश्यकता है। गांधीजी स्वयं अहिंसा धर्म का पालन सरकार के लिए उचित नहीं मानते थे क्योंकि कबायिली आक्रमण कारियों के विरुद्ध काश्मीर में सेना भेजने का आदेश उन्होंने दिया था। वास्तव में अहिंसा का प्रयोग उस देश के लिए उचित है जो अहिंसा के महत्व को स्वयं समझ कर हमारे प्रति भी अहिंसक हो। हमारे समस्त वेद-शास्त्रों में अन्यायी, अत्याचारी, दस्युओं और पिशाचों के विरुद्ध दण्ड देने का विधान है। वेद भगवान का आदेश है—

'स्थिरा वा सन्त्वायुधा पराणुदे वीलू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः।'

अर्थात् तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र मजबूत, शत्रु को पराजित करने वाले और प्रशंसनीय हों। तुम्हारी सेनाएं अत्यन्त प्रशंसनीय हों। महाभारत में भी कहा है—

'कृते प्रति कृतिं कुर्यात् हिंसितम् प्रति हिंसितम्।
अत्र दोषं न पश्यामि शठे शाठ्यम् समाचरेत्॥'

अर्थात् उपकारी के प्रति उपकार और क्रूर के प्रति क्रूरता और हिंसक के प्रति हिंसा में कोई दोष नहीं है।

राजहंस

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब हमने तथा कथित अहिंसा (जिसे मैं तो कायरता मानता हूँ) के प्रयोग को अपनाया तब-तब हम पतन के घोर गर्त में गिरे। अतः यथा योग्य व्यवहार (वाद) को हमें अपनाना ही होगा। एक ओर हमारे शत्रु देश चीन में १०० से भी अधिक चोटी वैज्ञानिक अधिक से अधिक शक्तिशाली अणुबमों के निर्माण में संलग्न हैं और दूसरी ओर हम अणुबम निर्माण न करने की बात को दुहरा रहे हैं। हमारा नेतृवर्ग अणुबम निर्माण न करने की बात कहते समय सेला, बोमडीला तथा लद्दाख में हुए भारतमाता के अपमान को भूल जाते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि यदि हम अणुबम बनाएंगे तो विश्वशान्ति को खतरा उत्पन्न हो जाएगा। तथा पंचशील पूर्ण पर राष्ट्रनीति में बाधा होगी। उनकी ये बातें हास्यास्पद हैं क्योंकि मिग विमान लेने, मिग विमान बनाने, अमेरिका से ७वां जहाजी बेड़ा मंगाने, इंगलैण्ड से फ्रिगेट बोट लेने, विमानों के इञ्जन लेने, देश में विजयन्ता टैंक बनाने, आयुध निर्माण के कारखानों की उत्पादन क्षमता द्विगुणित करने से जब विश्वशांति तथा पंचशील पूर्ण पर राष्ट्रनीति में जब कोई व्यवधान उत्पन्न न हुआ तो अणुबम निर्माण से कौनसा आसमान टूट गिरेगा?

जहाँ तक विश्वशान्ति की बात है, यह उद्देश्य अत्यन्त पवित्र और महान है परन्तु प्रश्न यह है कि क्या हम विश्व शान्ति के लिए अपने आपको शत्रुओं के हाथों में सौंप दें? चीन के नेताओं

राजहंस

चाओ, माओ की यह स्पष्ट घोषणा है कि संसार में कम्युनिज्म के विस्तार के लिए यदि हमें विश्व की आधी जनसंख्या को मौत के घाट उतारना पड़े तो भी हम नहीं हिचकेंगे। परमात्मा न करे यदि चीन इस बम का प्रयोग हमारे विरुद्ध करे तो इससे बचाव का उपाय हमारे पास क्या होगा?

सुरक्षा परिषद के पांचों स्थायी सदस्य राष्ट्रों के पास अणुबम से भी भयानक हाइड्रोजनादि बम हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि सुरक्षा परिषद ने विश्व शान्ति की रक्षा का भार स्थायी सदस्य राष्ट्रों को सौंपा है। तो जब सोवियत रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांसादि देश परमाणु बम बनाते हुए भी विश्वशान्ति, सह अस्तित्व और पंचशील के रक्षक हो सकते हैं तो हम अणुबम बनाकर इन सिद्धान्तों की रक्षा क्यों नहीं कर सकते? जब कि हमारी आस्था इन सिद्धान्तों पर राजनैतिक नहीं अपितु प्राचीन परम्परागत है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का हमारा लक्ष्य अति प्राचीन है। 'अणुबम निर्माण करने से हमारी आर्थिक स्थिति दुर्बल हो जाएगी' इस तर्क को अणुबम निर्माण के विषय बहुत वजनदार समझा जाता है। किन्तु इस प्रकार के विचार रखने वाले महानुभाव कृपया निम्न तथ्यों पर विचार करें—

१, Atomic Energy Comision के अध्यक्ष डा. एच. जे. भाभा ने एक रेडियो गोष्ठी में कि १८½ लाख रु. व्यय करके १८ मास में हम एक मेगाटन शक्ति का अणुबम बना सकते हैं।

राजहंस

१०० मेगाटन शक्ति का बम बनाने में 1½ करोड़ रु० व्यय होगा। जब कि हमारी सरकार ने पंचवर्षीय योजना में ५००० करोड़ रु० व्यय करने (सुरक्षा पर) का निश्चय किया है अर्थात १० अरब रु० प्रति वर्ष हमें सुरक्षा पर व्यय करना है। सन् १९६३ में हमने ८९६ करोड़ रु० अपनी सुरक्षा पर व्यय किए। अर्थात निर्धारित लक्ष्य से १०३ करोड़ कम।

2. 3400 करोड़ से अधिक रुपये हमारे देश में काले धन के रूप में छिपाये गए हैं। उसे निकालकर अणुबम निर्माण में लगाया जा सकता है।

3. इसके अतिरिक्त सुरक्षा कोष (N.D.F) में हमने ५९ करोड़ रुपये एकत्र किए हैं उनमें से कुछ धन का उपयोग इस कार्य के लिए किया जा सकता है।

इस प्रकार अणुबम निर्माण में आर्थिक कठिनाई का निराकरण हमने देखा।

अब हम राजनैतिक दृष्टि से अणुबम निर्माण क्यों आवश्यक है इस पर विचार करेंगे। वास्तव में चीन ने अणु बम का विस्फोट करके न केवल अपनी सामरिक शक्ति का विकास किया है अपितु उसने ऐसा करके एशिया की राजनीति में भी विस्फोट किया है। इस परीक्षण से चीन की धाक एशिया के देशों में जम गई है। कोई भी निशस्त्रीकरण समझौता अब चीन के बिना अपूर्ण रहेगा। चीन के इस प्रभाव से आज

राजहंस

भी इण्डोनेशिया ने राष्ट्रसंघ से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। पाकिस्तान का झुकाव तो चीन की ओर स्पष्ट ही है। दूसरी ओर नेपाल, भूटान और सिक्किम पर भी हमारा कूटनीतिक प्रभाव समाप्त हो रहा है। यदि पुनः इस प्रभाव को स्थापित करना चाहते हैं तथा चीन के कूटनीतिक प्रभाव को समाप्त करना चाहते हैं तो हमें अणुबम निर्माण करना ही होगा। यदि आज हमने अणुबम का निर्माण कर लिया होता तो शाह अयूब के मुजाहिदों का साहस काश्मीर पर हमला करने का नहीं होता। शक्ति की ही विजय संसार में सर्वत्र होती है। शान्ति, अहिंसा तथा मानवता की रक्षा लुटेरों से करने के लिए भी शक्ति की आवश्यकता होती है। रही यह बात कि अणुबम बनाकर हम उसका परीक्षण कहाँ करेंगे? इसका उत्तर यह है कि अणुबम परीक्षण के लिए १०००० वर्गमील भूमि पर्याप्त है और वह हमें जैसलमेर के रेगिस्तानी इलाके में पर्याप्त है ही।

अतः राजनैतिक, सामाजिक तथा देशरक्षा आदि दृष्टियों से 'अणुबम निर्माण परमावश्यक है। अन्त में हम 'दिनकर' के शब्दों में कहना चाहते हैं—

'हीनता है स्वत्व कोई और तू त्याग तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे, बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।
'कुतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः'

कहानी ~

राजहंस

अचानक ही किसी के आने की आहट हुई। एकदम उसका एकाग्रमन आगमन की सूचना पाते ही उधर ही केन्द्रित हो गया। विस्मयभूत आंखों से उसने देखा, वह कोई गैर नहीं बल्कि उसी का

> प्रस्तुत कहानी एक निर्धन माँ की आन्तरिक भावनाओं की कहानी है जो अपने बेटे के लिए अपनी सारी लालसाओं को भस्म कर देती है तथा दूसरी ओर दो मित्रों की जो एक दूसरे के सुख-दुख के साथी होते हुए भी अन्त में सदा-सदा को दूर हो जाते हैं। कहानी में एक व्यथा है। दर्द है - आगे 'लालसा की चिता' आपको कहाँ तक पसन्द आई यह आपकी भावुकता पर निर्भर है।
>
> — सम्पादक

मित्र 'बंधुत्व' था। इतनी रात को आने का कारण वह समझ न पाया। मित्र के चेहरे पर घबराहट एवं चिन्ता की रेखाएं उभरी हुई थी, वह अन्दर आकर हाँफते हुए बोला, "क्या तुम इस समय मेरी मदद कर सकते हो। शीघ्र बोलो, नहीं तो मुझे देरी हो जाएगी।"

वह एकदम सकपका सा गया। उसने मित्र को सहारा देकर बैठाया और बोला "हाँ कहो। मैं तुम्हारी क्या सहायता करूँ।" वह उसके नजदीक आकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से बोला, "मुझे इसी समय जैसे भी हो, तीस रुपये दे दो। मैंने 'पटना' जाना है।"

राजहंस

"इतनी रात को कहीं दिमाग तो खराब नहीं, सुबह चले जाना।" सचिव ने आश्चर्य से पूछा।

"तुम अभी तक समझे नहीं। माँ की तबीयत बहुत ज्यादा खराब है, अभी-अभी तार आया है।-- लो यह देखो --।" उसने जेब से निकालकर तार आगे बढ़ा दिया।

तार देखने के साथ मित्र ने 'हामी' भर ली। एकदम वह उठा और संदूकची से तीस रुपये निकालकर, खुद भी तैयार होने लगा।

परीक्षा सन्निकट थी और दोनों ही उस [illegible] की तैयारी करने में जुटे हुए थे। 'बंधुत्व' एक गरीब छात्र था। जिसकी पढ़ाई बड़ी कठिनता से चल पा रही थी। पिता तो बचपन में ही विदा ले चुके थे, परंतु माँ, किसी साहूकार के यहाँ चौका-बर्तन कर बेटे की पढ़ाई के लिए खर्चा भेजा करती थी। 'लालसा' बड़ी चीज होती है, इसके उत्पन्न होने से, मजबूरी भी जरूर होती है। बंधुत्व की माँ ऐसी थी। स्थितियों में अपना समय काट रही थी। 'बंधुत्व' इतनी दूर से बनारस अध्ययन करने आया हुआ था। वह भी अपनी पढ़ाई के लिए दो-तीन जगह 'ट्यूशन' किया करता था। जिससे उसे महीने में 'अस्सी रुपये' तक जीवन निर्वाह के लिए हो जाता था। एक कमरा उसे मुफ्त में मिल गया था। उसी के पास ही एक कमरा और था। जिसमें उसका मित्र सचिव रहता आ रहा था।

राजहंस

सचिव एक धनी बाप का बेटा था। जो बनारस से दूर स्थित एक गांव का जमींदार था। इसलिए 'ज्ञानार्जन' करने के लिए वह बनारस ही आया हुआ था। बंधुत्व उसका घनिष्ट मित्र था। उसके लिए प्राण देना भी वह छोटी सी बात समझता था। आज डेढ़ वर्ष होने को आ गए परन्तु उनमें किसी प्रकार की रेखा, मित्रता के बीच में नहीं खिंचने पायी। 'सचिव' ने अपना मातृस्नेह बचपन में ही खो दिया था। उसका मन ममता को पाने के लिए हमेशा तरसता रहता था। 'सचिव का बाल्यकाल परिस्थितियों के झरोखों के साथ परिवार की सम्पदा से सुखी हो गया था। परन्तु बंधुत्व बाल्यकाल से ही कई परिस्थितियों से गुजर कर मायूस जिन्दगी व्यतीत कर रहा था।

समय बड़ा बलवान होता है। सुख-दुःख एवं गम के तूफान व हंसीखुशी की लहरियां समय अपने साथ लेकर चलता है और आदमी की शालीनता को चुनौती देता आया है।

• • •

सचिव तैयार होकर बंधुत्व के साथ बाहर निकला, वें दोनों स्टेशन की ओर चल पड़े।

गाड़ी प्लेटफार्म नं. ४ पर खड़ी थी। दोनों मित्रों के नेत्रों से अश्रु बहने लगे। सचिव ने 'दस का एक और नोट' निकाल कर कहा, "यह लेलो। कभी आवश्यकता पड़ जाए। अगर

राजहंस

और रुपयों की आवश्यकता पड़े तो सहर्ष ही लिख देना।" मित्रता की परिभाषा ने अपना लक्ष्य स्पष्ट कर, मित्र ने मित्र को गले से लगा लिया। गाड़ी ने भी 'सीटी' देकर- मित्रता शब्द में हलचल सी पैदा कर दी। दूरता को बोध करते हुए सचिव ने फिर मुड़कर देखा तो उसे एक काली प्रतिमा सी खिड़की पर से उस घटना को चीनी हुई दिखलाई पड़ी।

● ● ●

बंधुत्व के मां से शीघ्र मिलने की लालसा महसूस हो रही थी पर उसे क्या मालूम कि भविष्य उसके लिए क्या लिखने वाला है।

पटना स्टेशन पर गाड़ी रुकने के साथ ही। उसके पाँव जहाज की तरफ बढ़ चले। जहाँ कि ब्रह्मपुत्र का प्रवाह अविरल गति से बह रहा था। जहाज छूटने में अभी पन्द्रह मिनट की देरी थी। तभी उसे एक सज्जन आते हुए दिखलाई पड़े। पास आने पर, वह पहचान गया कि वह उसी के गांव के मुंशी थे। वे बंधुत्व की ओर कोई ध्यान देकर 'दूसरे डेक' की तरफ मुड़ गए। बंधुत्व ने भी इस समय चुप रहना ही अच्छा समझा।

'पटना' से बंधुत्व का गांव ब्रह्मपुत्र की धारा से दस मील की दूरी पर था। सिर्फ जहाज से आना जाना लगा रहता

राजहंस

भोंपू बज उठा। लंगर डाल दिया गया। मशीन की गड़गड़ाहट उस जल प्रवाह में गुंजित होकर, विलीन हो चुकी थी। सभी लोग अपने-अपने डेक पर जा चुके थे। पानी के उतार-चढ़ाव को पार करता हुआ जहाज बड़ी तीव्रता से गति करता हुआ आगे बढ़ रहा था। करीब डेढ़ घंटे के बाद जहाज ने लंगर उतार दिया और गांव के छोटे से स्टेशन पर जाकर रुक गया।

बंधुत्व भी तुरन्त उतरा तथा कच्ची सड़क पर जैसे ही आगे बढ़ने को हुआ तभी 'राम-राम सत्य है' की ध्वनि उसके कानों में गूंज उठी। वह ध्वनि धीरे-धीरे समीपता का बोध कराती जा रही थी।

वह थोड़ा सा आगे बढ़ा ही होगा कि किसी बोझिल वस्तु के भार के कारण वह रुक गया। सामने से एक 'शव' आता हुआ दिखलाई दिया। वह एक टक, स्थिर नेत्रों द्वारा, उस शव को देखने लगा।

अचानक ही पीछे से किसी ने ध्वनित एवं करुणा भरे शब्दों में कहा "कौन? अरे बंधुत्व—। तुम अब आ रहे हो—। तुम्हारी मां तो, अभी थोड़ी देर हुई ... चल बसी। बेचारी काफी 'रट' लगाये रही तुम्हारे नाम की। पर तुम्हारी झलक दिखलाई भी नहीं दी। तुम्हारे ही मित्र ने तुम्हें तार दिया था जिसके 'पैसे' अभी देने हैं। 'कफन' के लिए भी पैसा नहीं था। सो अपने ही पैसों द्वारा 'कफन' के कपड़े का बन्दोबस्त किसी तरह से कर ही दिया था।

राजहंस

'आदमी' कितना निष्ठुर होता है, उसमें 'बेहरमी' की 'बू' तक भी उसका साथ नहीं छोड़ती, दो-दो पैसों के लिए भी जीभ का पानी मर हो जाता है, 'धन' की लिप्सा उसके 'पागलपन' को संवार देती है। बीत किस पर रही है और तमाशा कौन देख रहा है, पर आनन्द लेने वाले ही दूसरे होते हैं।

'बंधुत्व' को मानो काठ मार गया हो, वह एकटक उस शव को देखे जा रहा था। न उसकी आँखों में 'आँसू' न ही आश्चर्य न ही हृदय की ममता, स्नेह, दया एवं न ही किसी प्रकार के भाव ही उसके चेहरे पर झलक रहे थे। वह किंकर्तव्य विमूढ़ होकर खड़ा का खड़ा ही रहा। शव उतारा गया तथा उसकी निगाह उस पर झुक गयी। कहारों ने शव का कपड़ा मुखड़ा से हटा दिया। भावनाओं का संचार हुआ। आत्मा हृदयहीन होकर चीख उठी। अंगों में शिथिलता एवं मन में प्रवाह तथा नेत्रों में 'ममता' का दर्द एवं प्यार। वह 'मां' कहकर 'शव' से लिपट गया तथा उस मुखड़ा को चूमने लगा। पागलों की भाँति उसने अपने बोलों से शून्यता प्रारम्भ कर दिया। पर! हाय रे! ममता, जो कि उसके इस पागलपन पर भी नहीं पिघली। क्योंकि वह निर्जीव थी। अगर 'ममता' सजीव होती तो शायद दृश्य और का और होता। कितना मार्मिक एवं मर्मस्पर्शी दृश्य था वह।

किसी तरह लोगों ने उसे हटाकर पुन समझाया—

राजहंस

और कुछ तो अपने आंसू लेकर, इस दृश्य को देखते ही पहले जा चुके थे। शव उठा लिया गया। वह भी उन्हीं के साथ ही चल पड़ा। अब उसका अपने घर जाना बेकार सा हो गया था।

अंतिम संस्कार कर तुरन्त ही वह भीगे नेत्रों से विदा लेकर 'शरद' को अपने माथे से लगाकर तथा कुछ हाथ में लिए हुए पुष्प-पुंज की तरफ चल पड़ा तथा उस राख को उसने, जल प्रवाह में छोड़ दिया।

जहाज का भोंपू बज उठा। बंधुत्व ने अपनी जन्मभूमि को अन्तिम प्रणाम कर, अपने आंसुओं को पोंछ डाला, तथा कुछ जल हाथ में लेकर अपने सिर पर छिड़क दिया। पोंछने पर भी उसकी आंखों से आंसू बहते ही जा रहे थे। चिता का धुआं सारे आकाश में बादलों की भांति फैल चुका था। जिसके कारण, सूर्य की वह सुनहरी किरण मन्द पड़कर गहनता को धरा उत्पन्न कर; एक निराला वातावरण बनाती जा रही थी।

* * *

रात अधिक बीत चुकी थी। बंधुत्व ने कमरे में सामान रखा और बोझिल हृदय से चुप चाप पलंग पर लेट गया। ममता की तड़पन और 'मां' की सजीव मूर्ति उसकी आंखों के समक्ष घूम उठी। वह बिलख पड़ा। अश्रुओं की धार प्रवाहित हो चली। दुनिया में आज वह अकेला था। उसका जीवन सर्वस्व हर नियति ने छल लिया था, क्या स्वप्न पिरोकर वह गया था और कहाँ जाकर क्या

का क्या हो गया। इसका उसे जरा सा भी आभास नहीं था। वह काँप उठा और अन्धेरे में ही, उसकी चीख, कमरे के अन्दर गूंज उठी।

तभी दरवाजा खुला और 'सचिव' ने अन्दर प्रवेश किया। उसने लैम्प को जलाकर उसकी लौ तेज कर ज्यों ही उधर देखा काँप उठा। वह तुरन्त ही उसके नजदीक गया। और धीरे से बोला 'तुम रो रहे हो। 'मां' की तबीयत कैसी है? तुमने इलाज करवाया या नहीं?" तभी बंधुत्व अपने मित्र के गले से लिपट कर रो उठा। तथा उसी आवाज में अस्फुट शब्दों में उसने कहा "तुमसे मत पूछो 'मां'...तो। तुमसे...मत..." इसके आगे वह कुछ न कह सका और मूर्छित होकर गिर पड़ा।

'सचिव' सारी स्थिति भांप गया। उसने मित्र को बाहुओं में उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया और चिन्तित सा उसे न जाने कब तक देखता रहा। अचानक ही घड़ी ने २ बजा दिए। सचिव धीरे से उठा और उसे उसी अवस्था में आराम करता छोड़, अपने कमरे में आराम करने चला गया।

अभी कुछ ही देर, उसकी आंख लग पाई थी कि वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। एकदम स्वस्थ सा हो वह बंधुत्व के कमरे में गया, तो देखते ही उसके मुख से चीख निकलते-निकलते रह गयी। सामने पलंग पर बिस्तरा, अटैची कुछ भी नहीं था। कमरा एकदम उजाड़ सा दिखाई दे रहा था। मेज पर रखी थी

दवात, उल्टी पड़ी थी। कागजों के पन्ने इधर उधर बिखरे थे। आलमारी की पटें खुली हुई, हवा से इधर-उधर टक्कर खा रही थी। पन्ने हवा के झोंके से फड़फड़ाते हुए चक्कर काट रहे थे -- तथा कुछ पन्ने स्याही के [illegible] चक्करों पर आकर रंग चुके थे।

सचिव पागलों की तरह कमरे में इधर उधर चक्कर काटने लगा। उसका चेहरा स्याह पड़ गया था। कुछ देर बाद उसे होश सा आया तो उसने देखा कि मेज पर एक बन्द लिफाफा पड़ा है। जिसके दो कोने स्याही से रंग गये थे। उसे उसने शीघ्रता से खोला और एक सांस में पढ़ डाला। उसमें लिखा था —

'प्रिय सचिव',

युगों युगों तक मेरा प्यार।

तुम्हें मैं यह पत्र अपनी परिस्थितियों से बोझिल होने पर लिखने जा रहा हूँ। तुम्हें शायद सुबह आने पर कमरे को खाली देखकर विस्मय तो अवश्य होगा ही और हो सकता है मेरे पागलपन पर तुम्हें क्रोध भी आए। कारण तुम्हारी समझ में कुछ कुछ आ ही गया होगा फिर भी स्पष्ट रूप से मैं तुम्हारे सामने व्यक्त कर ही देता हूँ।

मां चली गयी। इसका शोक मुझे काफी पहुँचा। तुम जानते हो कि बचपन में ही पिता चल बसे थे। उस समय मां कि क्या स्थिति थी शायद इसका मैं वर्णन भी न कर सकूं। पिता के जाने के बाद मां हमेशा गुम-सुम बैठी रहा करती। न खाना, न पीना न सोना। उस समय

राजहंस

मैं सिर्फ नौ वर्ष का था। परन्तु समय चाल के साथ ही मां ने भी किसी के यहां नौकरी कर ली। इस तरह मां अपनी ममता एवं प्रेम को छिपा कर मेरी शिक्षा की तरफ ध्यान दिया। कितने कष्ट भोगे मां ने मेरे लिए। उनके मेरे लिए क्या नहीं किया यह कैसे लिखूं। दिन भर काम-काज में लगी रहती पर मेरे पिता की याद मां को हमेशा तड़पाए रहती थी। मां ने इस बात को गुप्त ही रखा। वह बाहर से बनावटी मुस्कान द्वारा मेरे मन को बहलाती रहती थी। पर बाद को मुझे मालूम हुआ कि उन दुःखों के बीच कितना 'खोखला' आत्मा ले [illegible] हो चुका था। दो-दो जगह काम करके उसने मुझे हाईस्कूल पास करा के ही दम लिया। बाद में मैंने इंटर पटना से किया। मैंने मां से साफ इंकार कर दिया कि पहले अपनी परिस्थिति देखें फिर आगे कि सोचेंगे। पर मां ने मेरी अनसुनी कर दी। गांव की किसी साहूकार से रुपये उधार लेकर मुझे बनारस भेजा। यहीं आकर मैंने समय तथा शिक्षा का फायदा उठाकर, ट्यूशन करना आरम्भ कर दिया था।

पर मां की बिमारी ने भी एक भयंकर रूप धारण कर लिया था। जिसका सन्देह मेरे मन को दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। पर स्थिति को देखकर मैं चुप ही था। तुम्हें मालूम होगा कि मैं उन्हीं दिनों अपने गांव भी गया था जिसमें मां के लिए हुए उधारों का भुगतान भी कर आया था। परन्तु मां की दशा दिनोंदिन बिगड़ती ही गई।

राजहंस

पर मां ने हंस कर एवं आँखों में इस बात को भी गुप्त रख मुझे जबरदस्ती ही बनारस विदा कर दिया था।

पत्रों का आदान-प्रदान भी चलता रहा। पर मां ने उसमें किसी भी प्रकार का, अपनी बिमारी के बारे में जिक्र ही नहीं किया।

पर---- आज ---। वह दिन कहाँ-। उफ.. कितना अन्तर -- कितना विषाद -- एवं कितनी नीरसता। शायद मैं इसी के बीच घुट घुट कर मर जाऊँ। अब जब तुम्हें सभी कुछ मालूम हो ही गया है तो अपनी 'नादानी' एवं 'मूर्खता' पर माफी चाहता हूँ। मैं मां के पास जा रहा हूँ। मैंने तुम्हारा कर्ज लिया था। सो मित्र आलमारी के ऊपर वाले खाने में रखा हुआ है। कहते हैं मित्र, कि मरते समय सबका उधार चुकता कर देना चाहिए। स्नेही मित्र। फिर भी मेरी आत्मा, तुम्हारी मित्रता एवं प्रेम पाने के लिए इधर उधर भटकती रहेगी।

सो मित्र मेरी बातों का बुरा मत मानना, मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगा। कभी भी मेरा प्रेम एवं सहयोग अलग नहीं हो सकता। मुझे खोजने की कोशिश न करना। मेरी अन्तिम अभिलाषा यही है कि तुम जहाँ भी रहो सदा खुश रहो। अच्छा मित्र।

तुम्हारा ही —
'बंधुत्व'

पत्र पढ़ते ही सचिव की आँखों के सामने अंधकार

सा हो गया। कुछ देर तक वह उन्हीं शब्दों और घटनाओं में डूबा रहा। पर सचेत होते ही वह आलमारी की तरफ लपका। हवा की तीव्रता से आलमारी का एक 'पल्ला' लपकते समय बांए तरफ खोपड़ी में लग गया जिससे घाव सा हो गया। फिर भी उसने उसकी परवाह न की। आलमारी के ऊपर के खाने में उसे एक अंगूठी सुनहरी किरणों से प्रकाशित दिखाई पड़ी। तथा वहीं 'बंधन' की एक तसवीर पड़ी थी। सचिन ने अंगूठी को उठाया और उसे वहीं फेंककर फोटो को हाथ में लेकर गौर से देखने लग गया। सचिन के आंसुओं ने उसे भिगोने लग गए।

अचानक ही उसने तसवीर को एक कोने में फेंक दिया तथा बाहर की तरफ लपका और यह चिल्लाते हुए कि "अब मैं उस अंगूठी और फोटो का क्या करूंगा जब कि तुम ही न रहे - और वह तुम्हारा प्रेम ही - जो अब सदा के लिए मर चुका है ----।"

> तुम कहते हो, तुम्हारा समाज खुश है और सम्पन्न है।
> यह कैसे सम्भव है जब तुम्हारे यहाँ लाखों दीन हैं।
>
> — एडम स्मिथ

हमारी खाद्य समस्या

—ब्रजवीर वेदालंकार (प्रथम वर्ष)

भारत कृषि प्रधान देश रहा है। यहाँ पर इतना अन्न होता था कि यह दूसरे देशों को भी काफी अन्न भेजता था। १९५२ मे पंजाब मे गेहूं का भाव डेढ़ रुपया प्रतिमन था। २य महायुद्ध के अन्त तक अन्न काफी सस्ता था। २य महायुद्ध मे अवस्था शनै शनै बिगड़ गई और उसके अन्त तक बहुत बिगड़ गई। इसका कारण यह भी था कि अन्न पैदा करने वाले किसान हजारों की संख्या में २य महायुद्ध मे मारे गए।

<u>वर्तमान अवस्था</u> — भारत-विभाजन के पश्चात् हमारी खाद्यसमस्या विकट हो गई। इसका एक कारण यह था कि पाकिस्तान मे अनाज की

राजहंस

काफी मण्डियां थी जो कि भारत को अनाज देती थी, अब वह अनाज आना बन्द हो गया है। इसका दूसरा कारण यह था कि भारत के अनेक मुसलमान किसान व जमींदार पाकिस्तान चले गए और उनकी खेतियों को संभालने वाला कोई न रहा। इधर आये शरणार्थियों को भूमि दी गई परन्तु थोड़े समय के लिए, अतः उन्होंने अधिक अन्न उत्पादन के लिए कोई विशेष प्रयत्न न किया, इस प्रकार अनाज की काफी कमी हो गई।

जन-संख्या की वृद्धि की वेग अधिक है, उत्पादन की वृद्धि कम।

मुद्रा-स्फीति तथा द्वय युद्ध की सम्भावना भी अन्न की अधिक महँगाई के कारण हैं।

खाद्यान्न पर कन्ट्रोल होने से भी अन्न छिपा लिया जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि भारत को काफी अन्न बाहर से मँगवाना पड़ा। पाकिस्तान में अन्न बहुत सस्ता है परन्तु भारत में बहुत महंगा। बहुत से विचारकों का यह मत है कि भारत पाकिस्तान में खुला व्यापार हो तो यह समस्या कभी की हल हो गई होती।

भारत ने दृढ़ निश्चय किया था कि १९५१ के अन्त तक वह अन्न के विषय में आत्मनिर्भर हो जाएगा और इसे अनाज बाहर से नहीं मंगवाना पड़ेगा।

राजहंस

— समस्या का हल —

इसके दो उपाय है —

१, अधिकाधिक अनाज पैदा किए जाए।

२, अनाज के खर्च को कम किए जाए।

अधिकाधिक अन्न उत्पन्न करने के लिए नाना उपाय प्रयोग मे लाए जा रहे हैं ——

१, "अधिकाधिक अन्न उपजाओ" आन्दोलन प्रारम्भ किया गया है। कोठियों को फुलवाडियों और बगीचियों को खेतियों मे परिवर्तित कर दिया गया है। कालिजों और स्कूलो मे फालतू भूमि पर साग-भाजियां उगाई जा रही हैं। देश में जहाँ कहीं भी फालतू भूमि पड़ी है उसे प्रयोग में लाया जा रहा है।

२, भूमि को अधिक उपजाऊ बनाया जा रहा है।

३, वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से।

४, ट्रैक्टरों आदि अन्य उपकरणों के प्रयोग से।

५, स्थान-स्थान पर नई योजनाओं के अनुसार नहरें खोदी जा रही हैं, यथा भाखरा बन्ध पर और नंगल बंध पर। इन योजनाओं से लाखो एकड़ भूमि को पानी मिल सकेगा।

भारत में लगभग 4 करोड़ एकड़ भूमि पर खेती होती है परन्तु इसमें से एक करोड़ एकड़ भूमि को ही सिंचाई की सुविधा प्राप्त है। शेष चार करोड़ एकड़ भूमि इन्द्र देवता की दया पर निर्भर है। कभी अनावृष्टि कभी अतिवृष्टि। विशेषज्ञों का अनुमान है कि भारत

नदियों का केवल ६ प्रतिशत जल सिंचाई के काम में आता है। अत: ५ वर्षीय योजना कमीशन ने सिंचाई तथा शक्ति की परियोजनाओं को प्राथमिकता देते हुए इनके लिए ४५० करोड़ रुपये का व्यय निर्दिष्ट किया था।

इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि खेतों की अतिरिक्त उपज, कमी वाले क्षेत्रों में वितरण के लिए सरकार द्वारा पहुँच जाए। इसका उपाय यही है कि सरकार स्वयं उचित मूल्य पर किसानों से अन्न का समाहरण करे और केवल सरकार ही खरीददार हो। पंचवर्षीय योजना कमीशन ने इस सम्बन्ध में कहा है "खाद्य नीति निर्धारित करते हुए कोई भी ऐसा प्रस्ताव, या प्रयोग नहीं किया जा सकता जो इस उत्तरदायित्व को (अर्थात् उचित मूल्य पर लोगों में अनाज के समुचित बंटवारे को) हीन करे व जिससे हमारी अर्थव्यवस्था संकट में पड़ जाए या अनिश्चित हो जाए।" योजना कमीशन की सम्मति में अन्न के पूर्ण या आंशिक विनियन्त्रण की नीति संकट से खाली नहीं है। अत सभी राज्यों में अनाज के कन्ट्रोल और राशनिंग की वर्तमान व्यवस्था जारी रहनी चाहिए।

—: अनाज के खर्च को कम करने के उपाय :—

भोजन में परिवर्तन की आवश्यकता के प्रयोग से अन्न में काफी बचत हो सकती है। केला आलू और अन्यान्य सब्जियों के अधिक प्रयोग से स्वास्थ्य अच्छा रहता है और अन्न कम खर्च होता है। सप्ताह में एकबार व्रत रखना शारीरिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक

उन्नति के लिए आवश्यक है। हमें फलों का महात्म्य अधिकाधिक समझना चाहिए और भोजन को सात्विक और प्राकृतिक बनाने की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

उपसंहार — यद्यपि भारत अपने निश्चयानुसार 1951 के अन्त तक आत्मनिर्भर नहीं हो सका, तो भी खाद्य समस्या काफी सुधर चुकी है। अब भारत के पास भण्डार में काफी अन्न मौजूद है। इसके अतिरिक्त उपज की आशाएं आगे से बढ़ गई हैं। जनता यह समझती है कि यदि कन्ट्रोल न रहे तो खुले बाजार में अनाज सस्ता प्राप्त हो सकता है। वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए खाद्यमन्त्री ने विनियन्त्रण की ओर ध्यान दिया है। मद्रास ने अनाज पर से कन्ट्रोल हटा दिया और यह प्रयोग वहाँ अच्छा सफल रहा। यह ठीक है कि सभी राज्यों में समान खाद्यनीति का निर्धारित करना उचित नहीं, तो भी धीरे धीरे विनियन्त्रण की आवश्यकता को अब अनुभव किया जाने लगा है। सम्भवतः आगामी समय में यह ऐसा रूप धारण करे कि सरकार निर्धनों के लिए अनाज की सस्ती दुकानें खोल दे और जनता खुले बाजार में खरीद करे। लगभग 25 वर्ष पूर्व ऐसी ही अवस्था नमक के विषय में थी, जब कि बाजार में नमक का भाव [illegible]) प्रति मन था परन्तु सरकारी दुकानों में सीमित परिमाण में २) प्रति मन मिलता था। यह प्रयोग अच्छा सफल रहा था।

* * *

हवाई हमले से रक्षा

— सेवाराम साहित्यरत्न

१. जहां हों वहीं झट से जमीन पर कोहनी के सहारे छाती के बल लेट जाएं। तुरन्त रूमाल या कोई कपड़ा दांतो के बीच दाब लें, कानों को भी ढकने का प्रयत्न करें। जब तक खतरे से मुक्ति का बिगुल न बजे वैसे ही रहें।

२. रात्रि को घर में मध्यम प्रकाश रखें, खिड़कियों पर मोटे कपड़े का पर्दा लगाएं, हो सके तो डेलाइट बल्ब का प्रयोग करें। यह हमारे बिजली भण्डार से उचित मूल्य पर मिल सकते हैं।

३. खतरे का हॉर्न सुनते ही गड्ढों में जा छिपें। गड्ढा ६ फिट लम्बा ४ फिट गहरा और २ फिट चौड़ा होना चाहिए। अपने मकान के सामने या आस पास तुरन्त बना लीजिए। यह किसी भी समय आपकी और आपके स्वजनों के प्राणों की रक्षा कर सकता है।

४. अपने बच्चों को यह हिदायत दें कि वे इस प्रकार का हॉर्न सुनते ही इन गड्ढों में जा छिपें।

५. रात्रि को आने जाने का प्रोग्राम स्थगित रखें। अगर हास्पिटल या अन्य आवश्यक कार्य के लिए चलना पड़े तो निम्न सावधानियां बरतें। मार्ग में सिगरेट बीड़ी न पीयें। लालटेन की बजाए लाल या हरे शेड वाली टार्च का प्रयोग उत्तम रहेगा। इससे प्रकाश फैलता कम है।

ग्राम्य-बाला

— राजेन्द्र कुमार 'रंक', [illegible]
आयुर्वेद महाविद्यालय।

लिये कर में कुदाल
क्षेत्र-मध्य कर रही श्रम वह ग्राम्य-बाला !!
ग्रीष्म का तपता मध्याह्न
बरसती अग्नि प्रचण्ड;
उष्ण, रक्त शुष्क करने वाले
वेगवान हैं उनचासों पवन;
धूँ धूँ कर भूधर रहा जल !
लिये कर में कुदाल,
क्षेत्र मध्य कर रही श्रम वह ग्राम्य बाला !!

बह रहा स्वेद,
हो रहा तन रक्त-वर्ण,
झुलसता जा रहा अंग अंग,
पर हिलोर मन में ले रहा देश सेवा भाव,
चला रही कुदाल।
लिये कर में कुदाल,
क्षेत्र-मध्य कर रही श्रम वह ग्राम्य-बाला !!

राजहंस

चरित्र निर्माण

— जयदेव वेदालंकार (अन्तिम वर्ष)
वेदमहाविद्यालय .

> प्रस्तुत लेख में चरित्र-निर्माण के विभिन्न पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किए गये हैं जो जीवन को उत्तम पथ की ओर प्रेरित करते हैं। — सम्पा०

समस्त संसार के साहित्य में चरित्र निर्माण की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। यह सत्य है कि किसी देश के साहित्य में इस पर अधिक बल दिया है, कहीं न्यून। परन्तु चरित्र उत्थान का महत्व सर्वत्र प्राप्त होता है।

वास्तव में जिस देश और जाति का चरित्र उच्च नहीं है, वहाँ आलस्य, प्रमाद, अज्ञान, अन्धकार आदि की वृद्धि और अशान्ति का पूर्ण रूप से साम्राज्य हो जाता है। वह जाति तथा वह देश पराधीन हो जाया करते हैं।

राजहंस

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो जातियां चरित्रहीन हो गई, संसार में उनका अस्तित्व नहीं रहा। वस्तुतः चरित्र की रक्षा करना सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। मनु ने कहा है "आचारः परमो धर्मः।" चरित्र को उच्च बनाना परम धर्म है। अंग्रेजी साहित्य में भी चरित्र को प्रधान माना है। इसी आचार को परम धर्म एक अंग्रेजी साहित्यकार ने इस प्रकार व्यक्त किया है—
Welth is lost nothing is lost, helth is lost Some thing is lost ; But if The Charcter is lost every thing is lost."

इसका भाव यह है कि यदि धन नष्ट हो गया तो समझना चाहिए मेरा कुछ भी नष्ट नहीं हुआ, क्योंकि धन का उपार्जन मनुष्य अपने जीवन में पुनः कर सकता है। अपने पुरुषार्थ से निर्धन धनी बनते देखे गये है। यदि स्वास्थ्य नष्ट हो गया तो समझना चाहिए मेरा कुछ नष्ट हो गया परन्तु चरित्र के नष्ट होने पर मनुष्य का सर्वस्व नष्ट हो जाता है। वास्तव में जो व्यक्ति चरित्रहीन है वह समाज से यश और प्रतिष्ठा तो खो ही देता है साथ ही सच्चे सुख और शान्ति से भी वंचित हो जाता है।

चरित्र का निर्माण विद्यार्थी काल से प्रारम्भ करना अत्यन्त आवश्यक है यदि मकान की आधारशिला दृढ़

राजहंस

न हो तो उस पर कई मंजिल का मकान नहीं बना सकते, इसी प्रकार ब्रह्मचर्य काल से ही यदि हम चरित्र का निर्माण समारम्भ कर देंगे तो उस महान जीवन का निर्माण कर सकेंगे। चरित्र निर्माण से ही छात्र का शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास होता है।

भारत के तत्त्वदर्शी मनीषियों ने हिमालय की पावन उपत्यका और भगवती भागीरथी के उत्संग में समाधिस्थ होकर अपने चरित्र का निर्माण किया वहां सारे संसार को इस के महत्व का दिग्दर्शन कराया।

चरित्र निर्माण का मुख्य साधन उच्चविचार है। यजुर्वेद ने इसी बात का प्रतिपादन किया है "तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु" मेरा मन उत्तम संकल्प वाला हो। वस्तुतः उच्च विचार ही आचार निर्माण का मुख्य साधन है। २०वीं शती के जननायक महात्मा गांधी जी ने कहा - "Simple living and high thinking" अर्थात सादा जीवन एवं उच्च विचार ही चरित्र निर्माण की आधार शिला है। विद्यार्थी का तो यह प्राण है। यह उच्च विचारों की धारा मनुष्य को देव, मुनि, महर्षि और महात्मा बना देती है। शंकर ने भी इसी विचार को भवसागर पार करने का साधन बतलाया है। किसी ने इसको उच्च भावना कह के पुकारा।

छात्र विषय की गहराई तक पहुँचना चाहता है सो ठीक है परन्तु वहाँ उलझ न जावे। जब भी आसक्ति समूलतः करे

करने वाले विचार आविर्भूत हों तभी कोसों दूर भाग जाना चाहिए। जो इच्छा बार-बार किसी पदार्थ के समीप जाने की होती है उसका कुछ रहस्य है। यही भावना मनुष्य को विकास से विमुख करके पतन के गर्त में ले जाने का कार्य किया करती है जो छात्र विद्यार्थी अवस्था में अधिक श्रृंगार करते हैं उनकी यह अवस्था होती है। हमारे ऋषियों ने कहा है- "कौषीलवगंधाञ्जनानि वर्जय" नाच, भद्दे गाने, तेल फुलेल, श्रृंगार और अञ्जन लगाना वर्जित किया है। क्योंकि सरलता सदाचार की जननी है और श्रृंगार व्यभिचार का दूत है। कामना की पूर्ति करने से कामना अधिक प्रस्फुटित होती है। मनुस्मृति में स्पष्ट कहा है—

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति, हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।' अर्थात् जिस प्रकार अग्नि में घी डालने से अग्नि अधिक प्रज्वलित होती है। इसी प्रकार भोग की विषय रूपी अग्नि भोगने से शान्त नहीं हुआ करती है अपितु अधिक बढ़ जाती है।

वर्तमान समय में हमारी शिक्षापद्धति में आचार निर्माण का विशेष महत्व नहीं रहा, इसलिए आज कल स्कूलों और कालेजों के अन्दर चरित्रहीनता का नग्न प्रदर्शन होता है। पाश्चात्य सभ्यता के अन्दर आज नवयुवक बहा जा रहा है, पता नहीं कहां रुकेगा। उसे केवल भौतिकता और भौतिकी

राजहंस

की कहानियां याद हैं। चरित्र और नाक लेते थे कह दिया करता है "यह तो पुराने जमाने की बात है।" इसी का परिणाम है कि प्रतिदिन समाचार पत्रों में हम चरित्रहीनता की घटनाएं पढ़ते हैं। आज दुराचार, भ्रष्टाचार और बलात्कार हैं, यह भी उसी का परिणाम है। हमारा पतन इतना हो चुका है कि गीता की अमृत वाणी, वेदों के उपदेश, उपनिषदों के सन्देश, दार्शनिकों की तत्व विवेचना, सन्तों की वाणी, कान्ट के सिद्धान्त, अरस्तू की मर्मवेदना सब हमारे लिए व्यर्थ हो गए हैं। हम जीवन रहस्य को भूल गए, मार्ग से भटक गए हैं। कहाँ आज से नव लक्ष वर्ष पूर्व भारतीय नवयुवक अपनी भाभी के तन के गहनों को इसलिए नहीं पहचान पाया कि उसने उसका तन कभी देखा तक नहीं वह केवल पैरों के आभूषणों को इसलिए पहचानता है कि वह प्रति दिन उन्हें प्रणाम करने जाता है। श्लोक में इन भावों को दीजिए। लक्ष्मण जी कहते हैं —

'नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।

नुपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभि वन्दनात्।' आज से ५ हजार वर्ष पूर्व वीर शिरोमणि अर्जुन जब पर्वत पर तपस्या करने के लिए जाता है तो वहां उर्वशी नामी बाला उससे कहती है "आप मुझसे विवाह करलें" उससे अर्जुन पूछता है क्यों? विवाह किसलिए करना चाहती हो।" उर्वशी कहती है "आप महावीर हैं मैं आप जैसा पुत्र चाहती हूं। इस प

राजहंस

अर्जुन कहता है पता नहीं तुझ जैसा पुत्र उत्पन्न हो भी नहीं। आप मुझको भी अपना पुत्र मान लीजिए। यह कहकर उसके चरणों को छूता है। सारा इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा हुआ है वीर उग्रादित्य ने बहुत बड़े साम्राज्य को ठोकर मारकर अपने चरित्र की रक्षा की थी।

कुछ लोगों का भ्रामक विचार है कि कुछ अक्षर पढ़ लेने से तथा बड़ी-बड़ी गगन चुम्बी अट्टालिकाएं बनाने से, बड़े-बड़े बांध बांधने से, आकाश में उड़ने से मनुष्य का निर्माण हो जाता है। सभी विकासशील राष्ट्रों ने किया है। वास्तव में देखा जाए तो उन राष्ट्रों में आज भी वास्तविक शान्ति नहीं है। चरित्र के जिस क्षेत्र को उन्होंने अपनाया है उस क्षेत्र में ही उन्होंने विकास किया है। जैसे ईमानदारी, सत्य का व्यवहार करना, प्रतिज्ञा भंग न करना इत्यादि चरित्र के गुणों को अपना कर ही वे राष्ट्र भारी उन्नति कर गए हैं। चरित्र निर्माण का अभिप्राय केवल जननेन्द्रिय पर संयम ही नहीं है अपितु इस का क्षेत्र बहुत विशाल है। यह आवश्यक नहीं कि शिक्षित मनुष्यों का चरित्र भी महान होगा। अनुभव तो बल्कि यह सिद्ध करता है कि अनपढ़ लोग पढ़े लिखों से कहीं अच्छे हैं। मध्यकालीन सन्त: प्राय: सभी अनपढ़ थे परन्तु आज उनकी अटपटी भाषा की वाणियों पर पी-एच.डी हो जा रही है। हमारे सैकड़ों पृष्ठों की पुस्तकों में वह

राजहंस

सार नहीं जो कबीर के एक दोहे, तुलसी की चौपाई और मीरा के एक पद में है।

चरित्र का निर्माण ऋषि मुनि महात्माओं और वीर पुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ने तथा उनके सद्ग्रन्थों का गहन आलोडन करने से होता है। सत्संगति द्वारा हम अपने विचारों को उन्नत बना सकते हैं।

यदि हमने चरित्र निर्माण पर बल नहीं दिया तो राष्ट्र भवन की आधार निर्बल होने से स्वराज्य का भवन धूल धूसरित हो सकता है।

अतः जीवन में सच्ची शान्ति, सुख प्राप्त करने के लिए चरित्र निर्माण अत्यन्त आवश्यक है।

● ● ●

• रंग और व्यंग्य •

एक मोटी महिला बस पर चढ़ने लगी तो दरवाजे में फंस गयी। यह देखकर उनके पीछे खड़ा व्यक्ति हंस पड़ा। उसको हंसते सुन क्रोध में बोली "मगर तुम आधे भी इन्सान होते तो हंसने के स्थान पर मुझे अन्दर पहुंचाने में मदद करते।"

उत्तर था, "आप इससे आधी महिला होती तो सहायता की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।"

हिन्दुस्थान

हिन्दुस्थान! यह भारतभूमि!! यह हमारी पितृभूमि और पुण्यभूमि, संसार के अन्य भूप्रदेशों के समान है, इसलिए नहीं, तो इस भू प्रदेश पर, हमारा इतिहास निर्माण हो चुका है, इसी भूमि पर पीढ़ी दर पीढ़ी हमारे पूर्वजों का निवास रहा है। यह भूमि हमारे पुण्य पुरुषों का निवास-स्थान है। यहीं हमारी माताओं ने हमें अपने सीने से लगाकर अपने हृदय की अमृत-धारा का प्रथम घूंट पिलाया। हमारे पिता और प्रपितामहों ने हमें अपने कंधों पर लेकर यहीं - इसी भूमि पर छोटे से बड़ा किया। शताब्दियों से - सहस्राब्दियों से युग-युग से अनादि काल से, यह हिन्दुस्थान - यह भारतभूमि हमारी पितृभूमि है। हमारी पुण्य भूमि है।। जीवन का एक मात्र आशा स्थान। जीवन सर्वस्व॥

— हिन्दु हृदय सम्राट स्वातन्त्र्यवीर
वि० दा० सावरकर जी के अ०भा०
हिन्दु महासभा के १९वें अधिवेशन
में १९३८ ई० को दिये गये भाषण
का कुछ अंश – हिन्दी अनु० गं.ज. जाधव

मित्रों की आत्मा

दो बार घड़ी ने अभी चार बजाए थे। रमेश की माँ स्नानादि से निवृत्त होकर अपने पूजा-पाठ में लगी हुई थी। रमेश की पत्नी भी अब अपने कमरे में न थी शायद वह भी नित्य कार्यों में संलग्न थी। रमेश की बहन और वह स्वयं दोनों अभी तक सोए हुए थे। रमेश के पिता लाला सरन सेठ सबेरे घूमने के लिए जाने वाले ही थे।

भगवान सूर्य की कुछ मद्धिम रोशनी आकाश में चमकने लगी थी। थोड़ी-2 बदली भी आकाश में छायी हुई थी। सूर्य की लालिमा विकरित करते हुए ये बादल अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे। सबेरे की ठंडी-2 हवा मलयाचल से आती प्रतीत हो रही थी। रमेश की षोडशा बहन भी इस समय उठ चुकी थी, आकर खिड़की पर बैठी-2 शायद प्रकृति-सौन्दर्य को अपना लक्ष्य बना रही थी और अभी उसकी अँगड़ाइयाँ भी नहीं टूट पाई थी। कि..........

एक भयंकर चीख ने उसे चौंका दिया। उसने देखा कि उसका भाई रमेश हक्का-बक्का सा उठ खड़ा हुआ और उसने ही एक-दम कहना शुरू किया ___

राजहंस

"बचाओ-२ । मेरे राजा को । मेरा राजा मुझसे दूर जा रहा है। ऐसा कभी नहीं हो सकता, वह मुझे छोड़ कर नहीं जा सकता।"

वह अभी और कुछ भी कहना चाहता था कि नीचे से हड़बड़ाई हुई उसकी माँ भी नीचे से चीख सुनकर आ गई थी। माँ को देखते ही रमेश चुप हो गया था। माँ सब कुछ समझती थी, क्योंकि जब राजा इतने दिनों तक रमेश से दूर रहता था तो उसके मस्तिष्क में ऐसी ही प्रतिक्रियाएँ हुआ करती थीं।

लेकिन फिर भी माँ ने चीख का कारण जानना उचित समझा। रमेश शौचादि के लिए जा ही रहा था कि माँ ने उसे रोका और सारा हाल जानना चाहा।

रमेश ने कहना शुरू किया - माँ ये तो मेरी पुरानी बीमारी है। इस अवस्था में मुझे प्रायः ऐसा हुआ ही करता है।

माँ इसी बीच में बोल उठी - कुछ बताएगा भी या, इन्हीं घिसी-पिटी बातों को भूमिका बाँधता जायगा। इसकी कोई आवश्यकता नहीं। मुझे सिर्फ चीख का कारण बतला दे।

माँ। ये सब जानकर क्या करोगी। कोई नई बात नहीं। तुम्हें केवल उस बात को सुनकर हँसी आ जायेगी। ऐसी कोई खास बात नहीं जो आपको जरूर ही बतलाऊँ।

राजहंस

हाँ, हाँ मैं सब जानती हूँ। तू मुझे भाषण मत दे। मैंने कहा ना मुझे किसी फालतू बात को सुनने की आदत नहीं। आखिर कौन सी ऐसी बात है जो मुझे नहीं बतलाई जा सकती। तुम्हें बतलाना ही पड़ेगा।

माँ! वही जो राजा भैया हैं न। उन्हीं के बारे में कुछ बोल रहे थे। वेला ने कहा।

हाँ हाँ रहने दे ज्यादा बकबक मत कर चुपचाप बैठी रह। रमेश ने वेला पर कुछ गुस्सा दिखाया। रमेश की आँखों में इस समय आँसू छलक आए थे। वेदना का ध्यान उसे इस हालत के लिए मजबूर कर रहा था।

क्यों बेचारी पर गुस्सा कर रहा है। थोड़े दिनों में पराए घर चली जायगी। ऐसी जरा-२ सी बात पर गुस्सा करना ठीक नहीं होता। समझ ले। पराए घर में जाकर खाली बैठे-२ तुझ पर ही टिप्पणी किया करेगी।

तो माँ ये बीच में ही क्यों इस प्रकार बोल दिया करती है। मुझे भी तो दुःख होता है। यह मेरे दिल को नहीं समझती।

अरे रहने दे, छोड़ इस बात को। मैं तो न जाने कहाँ से कहाँ चली गई। अच्छा यह बता आज क्या हुआ।

अच्छी बात है माँ! अगर कहती हो तो बताना ही पड़ेगा। तो लो सुनो —

राजहंस

तुम्हें मालूम ही है कि राजा मुझसे क्या कह कर गया था। हम दोनों इतने दिनों तक कभी एक दूसरे से जुदा नहीं रहे। और दो दोस्त इतने दिनों तक दूर रह कैसे भी सकते हैं। वह मुझसे वायदा करके गया था कि जल्दी ही लौट आएगा। मेरा मन उसे नहीं जाने देना चाहता था, लेकिन दोस्त की बात टाली भी तो नहीं जाती। कोई बात नहीं थी अगर वह ठीक समय से लौट आता। आखिर क्या बात हो सकती है। वह क्यों लौट कर नहीं आया। पता नहीं वह मेरे बिना इतने दिनों कैसे रह गया। पहले कभी ऐसी घटना नहीं हुई। पहले वह इतनी देर कभी न करता था। तब भी मैं कितना अनमना सा रहता था। माँ! सच कहता हूँ मुझसे अब नहीं रहा जाता। उसने तो पता नहीं कहाँ से पत्थर दिल खरीद लिया। मुझे तो वह लगता है भूल ही गया है वह। लेकिन मेरी तो आत्मा नहीं मानती। माँ तुम्हीं बताओ क्या वह इतना निष्ठुर दिल था? मुझे तो विश्वास नहीं होता। मैं उसके साथ इतने दिन रहा हूँ। ऐसी कोई बात आज तक नहीं हुई। कुछ सोचने लगा रमेश इसी बीच में।

और हाँ माँ! अभी तक देखो! कोई पत्र भी तो नहीं दिया उसने। हद है माँ! क्यों न मेरे मन में ऐसे विचार उठें। क्यों न मैं बुरे-बुरे स्वप्न देखूँ। आखिर मैं भी इन्सान हूँ। कोई हैवान तो नहीं। और फिर वह कोई ऐरा-गैरा भी तो नहीं।

राजहंस

—— ऐसा क्यों सोचता है, तुझे तो हमेशा उसका शुभ ही सोचना चाहिए। माँ ने सम्मति जाहिर की।

— माँ! तुम मेरे दिल को तो जानती ही हो.......

...... हाँ, हाँ, जानती हूँ। आज बेचारे को गए हुए फकद दो तीन महीने ही हुए हैं। कोई ज्यादा दिन नहीं हुए। और तू है कि ऐसा समझ रहा है जैसे उसे दो-तीन साल गए हुए हो गए हों। तू तो एक दिन को एक युग समझ रहा है। जैसे मन को चाहेगा वैसा चलेगा। कोई काम लग गया होगा। उसी में उसने तेरा रूप देखना शुरू कर दिया होगा। नहीं तो वह स्वयं जल्दी लौट आता। जैसा दिल तेरा है वैसा ही उसका।

—— सो तो ठीक ही है माँ। मैं इससे इनकार नहीं करता। लेकिन क्या वह काम में संलग्न होते हुए भी एक पत्र भी नहीं डाल सकता था। तुम कहती हो कि कुल दो-तीन महीने ही हुए हैं, लेकिन हमें उसके बारे में कुछ पता नहीं है। आखिर वह कैसा है, कहाँ है। अगर वह एक पत्र हाल-चाल लिख कर डाल देता तो कम से कम दिल को तो शान्ति मिलती। माँ! मेरे दिल में कई असम्भावित दूषित विचार घर करते जा रहे हैं।

—— तू तो इस तरह व्याकुल हो रहा है जैसे इतने दिनों तक तू अपनी बीवी से दूर रहा हो। तुझे इतना व्याकुल नहीं होना चाहिए।

राजहंस

तुमने फिर अपना महावाक्य दुहरा दिया। कदाचित् फैंकलिन भी यही कहा करता था। उसकी दृष्टि में सच्चे मित्र केवल दो थे उनमें से एक पत्नी भी थी लेकिन दोस्त नहीं। मैं इस बात को नहीं मानता। आजकल की दुनियाँ में सब बिछुड़ जाते हैं, सब धोखा दे जाते हैं। लेकिन माँ! एक सच्चा मित्र कभी धोखा नहीं दे सकता। दुनियाँ में किसी के बिछुड़ने पर इतना दुःख नहीं होता जितना एक सच्चे मित्र के बिछुड़ने पर होता है।

अपने ज्ञान-भण्डार का किवाड़ बन्द कर। मैं जानती हूँ पत्नी दुबारा मिल सकती है, लेकिन एक सच्चा मित्र दुबारा मिलना असम्भव प्राय हो जाता है। एक सच्चे मित्र को पाना कोई आसान काम नहीं। बड़ी तपस्या करनी पड़ती है इसके लिए। कभी मुलम्मे और सोने का भेद जाना जा सकता है। दोनों की परख कर सकना कोई आसान काम नहीं। जब पच्चीस बार मुलम्मे को खरीद कर सोने का मूल्य चुकायगा, कई-2 बार ठोकरें खायगा तभी दोनों में अन्तर समझ पायेगा। (जरा रुककर) तेरी कहानी भी तो कुछ ऐसी ही है।

माँ पता नहीं मैं अपने आधे अंगों से कैसे कार्य कर रहा हूँ। तुम जानती हो माँ! आधे अंग से किया हुआ कोई भी कार्य प्रीतिजनक नहीं होता। क्योंकि उसमें मन

राजहंस

ही नहीं लगता। मन कहीं और ही भागा फिरता है। किसी और आशंका में डूबा हुआ रहता है। माँ, हम दोनों के शरीर जरूर दो हैं लेकिन अगर सच पूछो तो हमारे दिल एक हैं। हमारे अन्दर एक आत्मा निवास करती है। हम दोनों एक जैसा सोचते हैं एक साथ कोई कदम उठाते हैं। प्रत्येक कार्य हम एक होकर करते हैं, लेकिन आज मैं अकेला हूँ। मैं कोई भी कार्य पूर्ण नहीं कर सकता। - - - - - -

अच्छा, अब ये बता कि आज क्या हुआ?

अच्छी बात है। आज मैंने कई स्वप्न देखे। अनेकों कल्पित विचार मेरे सामने उपस्थित हुए। कुछ पर तो मुझे कतई विश्वास नहीं।

पहली बार मैंने देखा कि "चोरी के अपराध में उसे सख्त सजा दे दी गई।" इसी में देखिए कितनी असम्भावना है। उसे किस चीज की कमी है। आखिर किसी बिल्कुल निस्सहाय का लड़का तो वह है नहीं। और फिर किसी चीज की जरूरत थी तो मैं अभी मरा नहीं था।

दूसरा इस प्रकार है कि "किसी ने एक झगड़े में उसका खून कर दिया।" माँ! सच कहता हूँ ऐसा विचार आते ही मेरा खून खौल उठा। कौन ऐसा दुस्साहस कर सकता है मेरे होते हुए। जब मैं जिन्दा हूँ तो क्या उस पर ऐसा होते देख सकता हूँ। माँ, स्वप्न में ही मैंने उस क़ातिल

का कत्ल कर दिया। तो किस्सा वहीं खत्म हो गया।

"माँ, तीसरा स्वप्न किसी पर आधारित नहीं। वह स्वयं में बहुत खतरनाक है। मुझे पहले पर तो कतई विश्वास नहीं। दूसरे पर... भी नहीं। लेकिन तीसरे पर मेरा दिल कुछ-2 सम्भावना प्रकट कर रहा है। हो सकता है वह सच हो। मुझे ऐसा महसूस हुआ 'कि'' वह सरला बीमार है।"

माँ, तुम्हीं बताओ मेरी बेचैनी बढ़ेगी या नहीं। अगर यह सच है तो भी सब कुछ जानता हुआ भी उसके लिए कुछ नहीं कर सकता। मैं भी कितना दुर्भाग्यशाली हूँ अपने लिए कुछ नहीं कर सकता। वह बहुत ही भावुकता में बह गया।

इसी बीच में माँ बोल उठी- जा, ज्यादा सोच-2 कर दुःखी मत हो। स्वप्न कभी-कभार ही सच निकला करते हैं इन पर विश्वास कर लेना मूर्खता ही होगी।

अभी रमेश वहीं पर खड़ा हुआ था। बेला भी खिड़की पर से उठकर पलँग पर बैठ गयी थी। माँ रमेश को वहीं खड़ा देख उसे स्नानादि के लिए कह कर नीचे चली गई थी। रमेश भी अब निवृत्त होने चला गया था।

थोड़ी देर बाद जब रमेश नहा धोकर आया तो उसने देखा कि बेला अभी पलँग पर बैठी-2 रो सी रही है क्योंकि रमेश का पूरा प्यार उसे मिलता था, किसी प्रकार की

राजहंस

कमी न थी। लेकिन जब उसी के मुख से कोई भी कर्कश वचन सुन लेती थी या कभी डाँट दी जाती थी तब इसके दुःख का ठिकाना नहीं होता था। वह सारे क्लेश को रो-रो कर निकाल देती थी।

रमेश बेला के बगल में आकर बैठ गया और उसने उसको मनाना शुरु किया। उसके सिर पर हाथ फेरे। जब कभी ऐसी घटना हो जाया करती थी तो रमेश स्वयं उसको मनाता था। यहाँ तक कि वह खाना तक छोड़ देती थी। जब तक रमेश उसे मना न लेवे खाना भी नहीं खाती थी।

इतनी जल्दी नहीं रोना शुरु कर देते। जरा सी डाँट पर भी सिसकना शुरु कर दिया। देखो सारी धोती भी गीली कर डाली। आखिर ये पगलपन ही तो है। तू ऐसी गलती करती ही क्यों है। क्यों बीच में बोली थी?

मैंने कोई गलत बात थोड़े ही कही थी। जो आपने कही थी वही बात मैंने दुहरा दी थी और क्या कहा था।

तुमसे किसने कहा था?

आप माँ से बतला नहीं रहे थे मैंने कह दी। इसमें कौन सी बुरी बात हो गई। बेला ने सिसकते हुए उत्तर दिया।

ऐसे नहीं कहा करते मेरी बच्ची! किन्हीं दो की बातों में बीच में नहीं बोला करते। रमेश हमेशा प्यार में

राजहंस

बेला को नची कह करता था। और था भी तो उम्र में इसने से अधिक।

अच्छा, अब ये सिसकना बन्द कर मुझे तेरा रोना अच्छा नहीं लगता। तेरे रोने को देख कर मैं क्या कोई भी घबरा जाय।

अच्छा, अब जरा हँस दे।

हूँ न.

अब तो हँस दे। बहुत देर हो गई मनाते हुए। इतना गुस्सा नहीं किया करते अपने भाई पर।

बेला उसी तरह चुपचाप बैठी रही। अब उसने सिसकना बन्द कर दिया था।

बेला, अच्छा अब माफ कर दे। केवल एक बार हँस कर दिखला दो।

कोई चारा न देख रमेश ने बेला के पेट में गुदगुदी कर दी। अब बेला बिना हँसे न रह सकी। दोनों बड़े जोर से ठहा मार कर हँस पड़े।

और क्या काम है तेरा पहले बेचारी को भला बुरा कहेगा फिर मनाने बैठ जायगा। माँ ने हाथ में कोई चीज लिए हुए टिप्पणी की।

ले, अभी सबेरे ही जिसके बारे में सिर पीट रहा था, उसी राजा का पत्र तो क्या तार क्या आया है मुझसे

राजहंस

तो पढ़ा नहीं जाता। पता नहीं क्या लिखा है। शायद बम्बई से आया है। ले पढ़ तो सही, देख क्या लिखा है उसने। माँ ने बड़ी उत्सुकता जाहिर की।

बड़ा लम्बा तार किया है। ऐसी कौन सी बात हो गई। रमेश ने हाथ में तार लेते हुए कहा।

क्या लिखा है इसमें? माँ ने थोड़ी देर ठहर कर पूछा।

रमेश ने तार सामने मेज पर रख दिया और धम से पलँग पर बैठ गया।

क्या बात हुई रमेश। कुछ बता भी तो मुझे। मुझसे तो पढ़ा नहीं जाता नहीं तो तेरे पास लाती ही नहीं। जल्दी बता मुझे और भी काम करने हैं।

माँ क्या बताऊँ मेरी बात सच निकली। मेरा आज का स्वप्न सच निकला। माँ मैंने कहा था हम दोनों का दिल एक है, धड़कन भी एक है।

माँ, वह सख्त बीमार है।

ऐं! बीमार! भगवान न करे ऐसा हो।

हाँ माँ, वह सख्त बीमार है। और जबसे यहाँ से गया है तभी से बीमार है। पहले यहाँ से गया था बनारस, फिर २ दिन बाद ही बम्बई जाकर वहाँ बीमार हो गया।

क्या मालूम उसका कार्य भी पूरा हुआ होगा कि नहीं। बीमारी भी क्या आई उसका सब कार्य-क्रम बिगड़ गया।

राजहंस

न अपना काम ही कर सका और न ही घर लौट कर आ सका। इस बीमारी ने उसे ही नहीं मुझे भी ले डाला। कुछ ही दिनों में आधा रह गया हूँ। दिन भर उसी के बारे में सोचता रहता हूँ। कहाँ होगा, कैसा होगा? भगवान् को भी ये दण्ड परदेश में ही देना था। बेचारे को दोतरफा दण्ड भुगतना पड़ रहा है। क्या हालत होगी उसकी। रमेश की आँखों में आँसू आ गए और गला रूँध गया।

बेचारे ने मनचीतों को दोस्त बनाया था। कोई पैसा लेकर भाग गया। कोई कुछ तो कुछ। हर एक ने इसे धोखा ही दिया। इन घटनाओं से बेचारे का दिल टूट गया। लेकिन फिर भी उसने हिम्मत न हारी। किसी न किसी को मित्र बनाता ही रहा था। क्या इतनी बड़ी दुनियाँ में उसका एक भी सच्चा मित्र नहीं होगा।

औ हाँ जब वह एम.ए. कर रहा था तब एक लड़का इसका खून करने के लिए ही इसका मित्र बना था। बड़ा भोला-भाला प्रतीत होता था। रमेश के अन्दर सच्चे मित्र की आत्मा निवास करती है। उसे सभी पर विश्वास था। उसने उसे भी अपना मित्र समझा। उसे अपना ही एक अंग माना। उसे भी अपने दिल की धड़कन समझा।

लेकिन वह निकला कि दिन कॉलेज के एकान्त गीजे में जब दोनों टहल रहे थे तभी उसने उसे छूरी मार

चाही। एक बारगी माँ कम्पित हो उठी।

लेकिन भगवान ने कृपा की, रमेश एकदम सँभल गया। और बाल-बाल बच गया, नहीं तो मित्रों की ताक में उसी दिन उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती। मेरा इकलौता बेटा जाता रहता। मित्रों की आत्मा बदनाम हो जाती।

इस मूल्य को चुकाने के बावजूद चूँकि उसके अन्दर एक मित्र की आत्मा निवास करती थी और उसमें एक मित्र को पा लेने की तीव्र इच्छा भरी हुई थी सो वह इधर की तरफ बढ़ता ही गया।

अब रमेश इस विषय में कोई कदम समझ बूझ कर उठाता था। पहले की तरह अन्धाधुन्ध किसी को अपना मित्र नहीं समझ बैठता था। लेकिन उसके अन्दर वह अग्नि उसी के समान धधक रही थी। वह एक सच्चे मित्र को पाना चाहता था।

उसी साल उस की भेंट राजा से हुई थी। रमेश की कसौटी पर वह खरा उतरा। बड़ी परेशानियों और कठिनाइयों के बाद उसने मित्र पाया। और वह भी इस हालत में। क्या गुजर रही है रमेश पर मैं क्या जानूँ। शायद भगवान को रमेश का इतना बलिदान कम लगा। जैसी उसकी इच्छा। बेचारा बुद्ध वह क्षण भर में ही सोच गई।

(कुछ और भी लिखा है राजा ने। माँ ने कुंठित स्वर में पूछा

और कोई बात नहीं किसी माँ। अभी तक चिट्ठी न देने के कारण क्षमा माँगी है। रमेश ने उत्तर दिया।

बस!

बस। जा मेरी अटैची तैयार कर दे। मैं अभी एरोप्लेन से बम्बई जाऊँगा। उसने अपनी बहन की तरफ इशारा करके कहा।

आखिर ठहरा कहाँ है वह?

अपने किसी परिचित के यहाँ ठहरा है।

अजीब सी बात है। बुलाया तक नहीं भेजा। शायद तुम्हें कष्ट न देना चाहतीं हो। जा जल्दी कर, अटैची तैयार कर दे मैं नाश्ता लिए आती हूँ।

थोड़े दिनों बाद लखनऊ एक तार आया कि राजा स्वस्थ हो गया है। और हम कल ही लखनऊ पहुँच रहे हैं। ●●●

—(सुशील चन्द्र विद्यालंकार (प्रथम वर्ष)

सम्पादकीय

प्रिय, पाठक-वृन्द !

आज 4 वर्षों के अनन्तर, आपकी साहित्यिक, राजनैतिक और सामाजिक अभिरुचियों का प्रतिपादक 'राजहंस' पुनश्च आपके हाथों में देते हुए हमें असीम प्रसन्नता अनुभव हो रही है।

आधुनिक युग में पत्र-सम्पादन-कला अपने जिस चरम बिन्दु पर पहुँच रही है वहाँ तक जाने के लिए यह एक क्षुद्र प्रयत्न मात्र है — महाकवि कालिदास के शब्दों में 'तितीर्षुर्दुरतरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्' के समान है। किन्तु, फिर भी जैसा बना है, वैसा आप के सम्मुख है। आपका सहयोग और

राजहंस

सहानुभूति तथा प्रेरणाएँ यदि इसीप्रकार मिलती रही तो भविष्य में और सुन्दर सामग्री आपके सामने प्रस्तुत की जा सकती है।

वस्तुतः राजहंस पत्रिका का इतिहास कोई ५,६ या १० वर्षों का नहीं है अपितु इसका इतिहास स्वामी श्रद्धानन्द जी के काल से ही प्रारम्भ होता है। स्वामी जी ने इस पत्र की स्थापना अपने पवित्र कर कमलों द्वारा की थी।

इस पत्र ने केवल हमारा प्रोत्साहन और श्रुट पुट लेख सामग्री के द्वारा मनोरञ्जन ही नहीं किया अपितु इसने राष्ट्र को बड़े-बड़े साहित्यिक, कवि और कथाकार दिए। आज भी जो गुरुकुलीय स्नातक पत्रों के उच्च सम्पादक पद पर आसीन हैं, वे सब किसी न किसी रूप में 'राजहंस' के आभारी हैं। यह ठीक है कि राष्ट्र की हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में इसका नाम पूर्णतः विलुप्त है (हस्तलिखित होने के कारण)। किन्तु गुरुकुल के इतिहास में यह पत्र सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित एवं स्मरणीय रहेगा। ऐसा हमारा अटल विश्वास है।

आगे हमारा यहाँ के छात्र वर्ग से कुछ निवेदन है कि—यदि अ छात्र आपसी मतभेदों को भुलाकर लड़ाई-झगड़ों से दूर रहकर अपनी शक्तियों को इधर की प्रवृत्तियों में लगाएं तो हम में से बड़ी बड़ी प्रतिभाएं प्रकाश में आ सकती हैं

राजहंस

अन्तमें इस पत्र के सम्पादन के लिए जिन बन्धुओं ने हमें अपनी रचनाएं देकर उत्साहित किया है उनके हम कृतज्ञ हैं। तथा अपने उन बन्धुओं के प्रति भी जिनका किसी न किसी रूप में हमें सहयोग प्राप्त हो सका है।

●

यह तो हुई अपनी बात, आइये अब राष्ट्र की वर्तमान दशा पर कुछ विचार करें —

अभी अभी विजयादशमी का पावन पर्व रावणविजयी राम की शौर्यगाथा को याद दिलाकर व्यतीत हो गया। दीपावली के दीपों की ज्योति भी अमां के तिमिर को चीर कर भारतीयों को सदा-सदा के लिए अपने कर्तव्यों के लिए और राष्ट्र की रक्षा के लिए तिल-तिल जलने का पाठ पढ़ा कर व्यतीत हो गई।

आज हमारी स्वाधीनता के अठारह वर्ष व्यतीत हो गए हैं। अपने स्वाधीनता के अठारह वर्ष के इतिहास में यों तो हमने क्या क्या नहीं देखा, हमने देखा 'हिन्दी चीनी भाई-भाई के नारों के घोष से गगन को फटते और फिर देखा हिमालय की पर्वत शृंखलाओं पर चीन का आक्रमण का नग्न ताण्डव और भारत की मैत्री पर कुठाराघात। फिर देखा २८ मई को हमने अपने प्रिय नेता का स्वर्गवास। और फिर तभी हम क्या देखते हैं कि राष्ट्र में

राजहंस

मंहगाई का बाजार गर्म है, भ्रष्टाचार ने हमारे राजनैतिक ढांचे को खोखला कर दिया है। और राष्ट्र-भाषा व राजभाषा की समस्या को लेकर दक्षिण भारत में दंगे और मनमानी की छूट। और फिर इस १९६५ के वर्तमान सत्र में हमने देखा पाकिस्तान का रणकच्छ पर आक्रमण, जिसके समझौते की स्याही भी नहीं सूखने पाई थी कि अगस्त में कश्मीर की कुंकुम की क्यारियों में पाकिस्तानी लुटेरे और घुसपैठिए आ घुसते हैं और उसके पश्चात् होता है कश्मीर को हड़पने के लिए ब्रिटेन और अमरीका से खैरात में दिए शस्त्रों एवं चीन की साजिश से काश्मीर पर प्रत्यक्ष आक्रमण।

प्रश्न है यह सब क्यों? इस सबका कारण है हमारे शासकों की गलत नीतियाँ। राष्ट्र की सुरक्षा का ख्याल न कर हमने शान्ति और अंहिसा की थोथी बातें की। हमारे शासकों को स्मरण रहना चाहिए था कि पड़ोसी तो स्वाभाविक शत्रु होता है और केवल शान्ति-शान्ति रटने मात्र से शान्ति नहीं होती। शान्ति तभी सम्भव है जब दूसरे देश भी उस पर अमल करें। उस समय शान्ति की बातें करना एक मूर्खता या नासमझी ही समझी जाएगी जब दूसरा देश आक्रमण कर रहा हो और आप उसको चुप-चाप सह रहे हों।

राजहंस

क्षमा और शान्ति की बातें तभी सम्भव हो सकती है जब राष्ट्र शक्ति-सम्पन्न हो। इसीलिए राष्ट्रकवि दिनकर ने कहा है –

"क्षमा शोभती उस भुजंग को
जिसके पास गरल है।
उसको क्या जो दन्तहीन
विष रहित विनीत सरल है।"

आज आवश्यकता है राष्ट्र को तपा हुआ गोला बनाने को, उसे शक्ति सम्पन्न बनाने की जिससे शत्रु यदि इस राष्ट्र की तरफ आँख उठाकर भी देखे तो इस राष्ट्र की शक्ति के उग्र प्रताप और शौर्य को देखकर उसके दिल की धड़कन बन्द हो जाए और उसकी आंखों के आगे अन्धेरा छा जाए।

आज राष्ट्र की शिक्षा को भी भारतीय संस्कृति और सभ्यता में ढालने की महती आवश्यकता है। आर्थिक ढांचे में पूर्ण रूप से परिवर्तन की आवश्यकता है। किसान को उसकी उपज का समुचित मूल्य देकर अन्न के वितरण की जिन व्यापारियों ने गल्ले के स्टाक अपने तहखानों में जमा कर रखे हैं उसको बाहर निकलवाकर बिकवाया जाए। किन्तु ये सब कार्य दृढ़ता से ही सम्भव है।

आज भारतीयों के सामने एक बड़ी विकट स्थिति आ पड़ी है। उसे आज पता चलता जा रहा है कि कौन उसका मित्र है और कौन उसका दुश्मन। आवश्यकता इस बात कि है कि

राजहंस

हम सपनों के संसार को छोड़कर यथार्थ को देखें। किन्तु ऐसा भी न करें कि अपने आदर्शों की इतिश्री कर डालें। सत्य यह है कि आज भारत ही क्या सारा संसार ही उस कगार पर खड़ा है जहां या तो विनाश है या फिर राष्ट्रों की नीतियों उनके ढांचों में नये परिवर्तन होंगे। वैसे तो हमारे राष्ट्र मे इतनी ताकत है कि पाकिस्तान हमसे एक कश्मीर क्या हजार कश्मीर भी नहीं छीन सकता। हमारे लपलपाती संगीनों की प्यास उस दिन तक नहीं बुझेगी जब तक हम अपने शहीद जवानों के रक्त का बदला न ले लेंगे और काश्मीर की पाक धरती से पाकिस्तान के नापाक इरादों को समाप्त और उसे कोई बड़ा सबक न सिखा देंगे।

देखें! विश्व की राजनीति क्या मोड़ लेती है।

—'नीर' विद्यालंकार

राजहंस

सम्मतियाँ

मैंने "राजहंस" देखा। यह पत्रिका उन [illegible] से चल रही है जब मैं विद्यार्थी था। मेरे समय में तो यह [illegible] निकलती थी। गुरुकुल की प्रगतियों में इस पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान था। इस पत्रिका के सम्पादक आज देश के बड़े-बड़े पत्रों के सम्पादक के पद में कार्य कर रहे हैं। मुझे यह देख कर प्रसन्नता हुई कि विद्यार्थियों ने फिर इस पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया है। इस उत्साह के लिये मैं विद्यार्थियों को बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि जिस उत्साह से उन्होंने इसे प्रारंभ किया है वह उत्साह लगातार बना रहेगा और उस में कभी शिथिलता नहीं आने पायेगी।

सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
४-१२-६५

राजहंस

'राजहंस' का यह अंक देखा। प्रयास सराहनीय है। विद्यार्थियों में पत्रकारिता के प्रति रुचि देख कर प्रसन्नता हुई। सामग्री के चयन में कुछ और सावधानी की जाती तथा विषयों में विविधता और भी अधिक होती तो पत्र मनोरंजक होने के साथ ज्ञानवर्धक भी बन सकता था। विशेषतः विद्यार्थियों के पत्र में ज्ञान-विज्ञान के लेखों की प्रचुरता अधिक अपेक्षित थी। आशा है पत्र के संपादक और व्यवस्थापक भविष्य में 'राजहंस' के स्तर को और भी ऊँचा उठाने का उद्योग करेंगे। निरन्तर अभ्यास से ही भाषा का परिमार्जन होता है। राजहंस का प्रकाशन नियमित रूप से होता रहे, तभी यह संभव है कि इसके संपादन में अभीष्ट उन्नति हो।

सत्यकाम विद्यालंकार
3.12.64

राजहंस

इस पत्रिका में छात्रों की पाण्डुलिपियों का संग्रह किया गया है। अनेक दृष्टियों से यह प्रयास उपयोगी है। कम से कम इसके द्वारा छात्रों को अपना लेख छपाने की प्रेरणा तो प्राप्त ही होगी। मैं इस प्रयास की उत्तरोत्तर वृद्धि का अभिलाषी हूँ।

अम्बिका प्रसाद [illegible]

२८ नवम्बर १९८५ ई०

एम.ए., पी.एच.डी., डी.लिट.
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार।

'राजहंस' वाग्वर्धिनी सभा की ओर से प्रकाशित होने वाली एक प्राचीन पत्रिका है, जो सरस्वती नदी की भांति बीच २ में लुप्त हो कर पुनः प्रकट हो जाती है। इस पत्रिका ने श्री सत्यकेतु जी, [illegible] जी, चन्द्रगुप्त जी आदि अनेक लेखकों, पत्रकारों तथा कवियों को जन्म दिया है। छात्र जीवन में ये पत्रिकाएं छात्रों की मौलिक प्रसुप्त शक्ति की उद्बोधक होती हैं। इस वर्ष वाग्वर्धिनी के मन्त्री तथा लेखक छात्रों ने इसे पुनः प्रकाशित करके प्रशंसनीय कार्य किया है। परमात्मा से [illegible] नियमित रूप से प्रकाशित होती है

राजहंस

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में गुरुकुल के स्नातकों के योगदान का विशिष्ट महत्व है। परन्तु उसका बीज इसी प्रकार के प्रयासों में ही निहित है जैसा 'राजहंस' पत्रिका के इस अंक के द्वारा हमारे सम्मुख आ रहा है। मैं 'राजहंस' में योग देने वाले लेखक-छात्रों को भविष्य के सफल कवि, गद्यकार, और पत्रकार के रूप में देखता हूँ। इनकी सर्जनात्मक प्रतिभा का जैसा प्रस्फुटन इन पृष्ठों में दिखलाई पड़ता है, वह सब दृष्टियों से प्रशंसनीय तथा आशाजनक है।

मुझे विश्वास है कि छात्रों का प्रयत्न जारी रहेगा तथा प्रतिभाशाली छात्रों की रचनाएँ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होती रहेंगी। इससे जहाँ वर्षों पुरानी कुल-परम्परा की पुष्टि होगी वहाँ गुरुकुल के गौरव में वृद्धि भी होगी।

मैं पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए इसके लेखकों का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

26.11.'82.

राजहंस

चित्रितपत्रं राजहंसमिमं विलोक्य तरङ्गायते मानसम्। छात्राणामुल्लासः प्रशस्यः साधुवादार्हाश्च ते। पुरातनैरद्यतनैः पत्रिकायामेऽस्याः प्रकाशितास्ते च पुरस्कृताः सन्ति। एतस्य पत्रिकाप्रादुर्भावस्य श्रेयांसि [illegible] कविमित्र प्रधान आचार्यनीयो, येन मानितरङ्गाः [illegible] प्रेरणां गृहीत्वा; कुलपत्या च पत्रिकायाः उत्तरोत्तरं समुन्नतिं गच्छेत्।

([illegible])
२०-११-९२

सुना था, पढ़ा भी था कालिदास के मेघदूत में कि राजहंस मानसरोवर में कैलाश पर निवास करते हैं और शरद् ऋतु का काल आने पर जमीन की तरफ उड़ान भरते हैं।

वाह खूब! गजब ढा दिया! ब्रह्मचारी राजहंस को जमीन पर उतार कर ही रहे। जमीन पर तो राजहंस दूर है- उसको पकड़ कर 'राजहंस' पत्रिका के चन्द पन्नों ~~को~~ पिंजड़े में समेट दिया। आखिर ब्रह्मचारियों ने राजहंस को काबू में करके ही सांस ली।

कौन कहता है कि महाविद्यालय के ब्रह्मचारी निष्क्रिय हो गये हैं- उनमें अन्यान्य गतिविधियों का स्रोत सूख गया- और प्रतिभा की मछली

राजहंस

सूखे तालाब में छटपटाकर मर रही है। नहीं गलत है। ब्रह्मचारियों में प्रतिभा की मछली 'राजहंस' से रस पाकर फिर से जिन्दगी की सांस लेने लगी है। शाबाश। ब्रह्मचारियों कमाल।

मुद्दत से अफवाह थी कि 'राजहंस' बन्द हो गई। जैसे वैशाख-जेठ-आषाढ़ में राजहंस अपने पंख समेट कर कैलाश पर मानसरोवर में रहने के लिए मुख मोड़ लेता है। परन्तु अफवाह बे-नफा निकली। उसने अपने माशूक से मानों महज दिल्लगी की।

'राजहंस' पत्रिका को देखकर मेरा दिल बल्लियों उछल रहा है। 'राजहंस' के जो कोरे कागज बरसों से दीमक श्रीमान जी के लिए स्वादु भोजन के लिए सुरक्षित करके रखे हुए थे - उन दीमक श्रीमान जी की जिह्वा की आशाओं पर भी ब्रह्मचारियों ने कलई का पानी फेर दिया। अब श्रीमती दीमक सभा में खलबली मच गई है कि 'राजहंस' के कोरे कागजों को, इससे तो अच्छा था कि पहले ही चट कर जाते-फिर देखते कि कैसे पत्रिका निकल पाती। लेकिन

राजहंस

श्रीमती दीमकसभा का अब भी सर्वसम्मति से प्रस्ताव है कि 'राजहंस' के बाकी कोरे पन्नों को जल्दी से जल्दी चट करके हजम कर लिया जाय ताकि ब्रह्मचारी दुबारा पत्रिका न निकाल सकें। इसलिए मेरा नम्र परामर्श ब्रह्मचारियों को है कि 'राजहंस' के कोरे पन्नों को त्रैमासिक पत्रिका नियमित रूप से निकाल कर दीमक-जीवियों के पंजे से मुक्त करते रहना चाहिए। नहीं तो दीमक-जीवी 'राजहंस' के कोरे पन्नों को भारत के तिब्बत की तरह हजम करते जायेंगे।

विद्यार्थियों में सम्पादन कला की शिक्षा की नींव ऐसी प्रकार की पत्रिकाओं को सम्पादन करने से पड़ती है। फिर लेखन कला - अभिव्यंजना - का विकास होता है। लिखने से पहले कुछ पढ़ना भी पड़ता है अतः उनमें अध्ययन की प्रवृत्ति जागृत होती है। छात्रों में सुरुचि जगती है और आलतू-फालतू बातों की ओर

राजहंस

ध्यान नहीं जाता। चित्रकला की ओर भी
इससे अनुमान होता है।
मैं बिना देखे किसी प्रकार योजना की कल्पना
के सपनों में खो कर नहीं लिख रहा हूँ। मैंने
पत्रिका शुरू से आखिर तक देखी पढ़ी है।
इसमें श्री विजयकुमार जी का प्रयास प्रशंसनीय है।
श्री महावीर जी की सम्पादनकला चित्रकला
प्रशंसनीय है। 'प्रकाश' जी की कविताओं में कुछ
प्रतिभा मालूम होती है। श्री हरिहर बोथ जी
इसी प्रकार से एकांकी लिखते रहे तो जोरदार एकांकी
में सफल हो सकते हैं। धर्मवीर जी के लिखने
में आत्मसमर्पण प्रवृत्ति की झलक है। धर्मप्रिय जी
के लेख में पर्याप्त राष्ट्रभाषा के प्रति आदरणीय
प्रेम है - यदि महाराष्ट्र में हिन्दी का प्रचार जमाने
का बीड़ा लेलें तो बड़ा उपकार हो। श्री [illegible] जी
की कविता - 'लिए कर में कुदाल' - श्री पन्त जी
के गायन का स्मरण कराती है। श्री सुशील
जी कहानी 'मित्रों की आत्मा' - मुंशी प्रेमचन्द
जी के शैली का स्मरण कराती है।
सबको शाबाशी। शाबाश! मार लिया शेर

[illegible]
[illegible]

005714 ·

राजहंस

पंख पसार कर उड़ती हुई
राजहंस राजि नील गगन के नैसर्गिक सौन्दर्य को अप्रतिम बना रही थी। मगर मेघाधिपति को यह कब सह्य था। उसने कहा अपनी सैन्य को - छिपा लो इन राजहंसों को अपने आवरण में। सहसा ही नील गगन मेघ-मंडित हो गया। राजहंस राजि उसी में विलीन हो गई। सुना गया कि सदा सर्वदा के लिए। मगर एक दिन सबने देखा कि राजहंस राजि पूर्ववत् नील गगन पर शोभायमान हो रही है। सर्वत्र ही आह्लाद की मनोहर लहर दौड़ गई। मेघाधिपति पर मानव ने विजय पाई। विजयी मानव के रूप में इस पत्रिका को पुनः प्रकाशित करने वाले बन्धुवर विजय कुमार, महावीर और अन्य सहयोगी बन्धु प्रशंसनीय हैं। अब तो यही मंगल कामना है कि आह्लाद की यह प्रसादगामी राजहंस राजि हमें सदा ही आह्लादित करती रहे।

सुरेन्द्र कुमार विद्यालंकार

ता० 2.12.65.